

Chapter दो

देवताओं द्वारा गर्भस्थ कृष्ण की स्तुति

इस अध्याय में बताया गया है कि कंस का वध करने के लिए जब भगवान् ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया, तो सारे देवता समझ गये कि भगवान् देवकी के गर्भ में वास कर रहे हैं अतः देवताओं उनके सम्मान में *गर्भस्तुति* की।

कंस अपने ससुर जरासंध के संरक्षण में प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, बाण तथा भौमासुर जैसे असुर मित्रों की सहायता से यदुवंशियों को सताने लगा। इसलिए यदुवंशी अपने अपने घर छोड़ कर कुरु, पञ्चाल, केकय, शाल्व तथा विदर्भ जैसे राज्यों की शरण में चले गये। उनमें से कुछ ही, जो नाममात्र के मित्र थे, कंस के साथ रहते रहे।

जब कंस ने एक एक करके देवकी के छः पुत्रों (*षड्गर्भ*) को मार डाला तो अनन्तदेव ने देवकी के गर्भ में प्रवेश किया और भगवान् के आदेश का पालन करने वाली योगमाया की युक्ति से वे रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिये गये। देवकी के आठवें पुत्र के रूप में शीघ्र प्रकट होने वाले स्वयं

भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया कि वह यशोदादेवी के गर्भ से जन्म ले। चूँकि कृष्ण तथा उनकी शक्ति योगमाया एकसाथ भाई-बहन के रूप में प्रकट हुए इसलिए यह संसार वैष्णवों तथा शाक्तों से परिपूर्ण है और उनके बीच निश्चय ही कुछ प्रतिद्वन्द्विता है। वैष्णव जन परमेश्वर की पूजा करते हैं और शाक्तगण योगमाया की पूजा अपनी अपनी इच्छा के अनुसार दुर्गा, भद्रकाली तथा चण्डिका जैसे रूपों में करते हैं। योगमाया ने भगवान् के आदेशानुसार देवकी के सातवें पुत्र बलदेव या संकर्षण को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया। चूँकि संकर्षण कृष्ण के प्रेम को बढ़ाने के लिए प्रकट होते हैं इसलिए वे बलदेव कहलाते हैं। भगवद्भक्त बनने के लिए मनुष्य को चाहिए कि वह इन्हीं से शुभ शक्ति ग्रहण करे इसीलिए वे बलभद्र भी कहलाते हैं।

जब योगमाया ने देवकी की सातवीं सन्तान को रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया तो वसुदेव के हृदय में स्वयं भगवान् प्रकट हुए और तब अपने को देवकी के हृदय में स्थानान्तरित कर लिया। चूँकि भगवान् देवकी के हृदय में उपस्थित थे अतः ज्यों-ज्यों गर्भ की अवधि बढ़ती गई त्यों-त्यों देवकी तेजवान प्रतीत होने लगीं। इस तेज को देखकर कंस चिन्तित था किन्तु पारिवारिक सम्बन्ध के कारण देवकी को नुकसान नहीं पहुँचा सकता था। इस तरह वह कृष्ण के विषय में अप्रत्यक्ष रूप से सोचने लगा और पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हो गया।

इसी बीच में देवकी के गर्भ में भगवान् की उपस्थिति के कारण सारे देवता उनकी स्तुति करने आये। उन्होंने कहा कि भगवान् परम सत्य हैं। आत्मा स्थूल शरीर की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है और परमात्मा आत्मा से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। भगवान् परम स्वतंत्र हैं और उनके अवतार दिव्य हैं। देवताओं की स्तुतियाँ भक्तों की महिमा को द्योतित करती हैं और उन व्यक्तियों के भाग्य का बखान करती हैं, जो अपने को भौतिक प्रकृति की परिस्थितियों से ऊपरी तौर पर मुक्त मानते हैं। भक्त सदैव सुरक्षित रहते हैं। जब भक्त भगवान् के चरणकमलों पर पूरी तरह शरण ले लेता है, तो वह भौतिक संसार के भय से पूर्णतया मुक्त हो जाता है। देवताओं की स्तुतियाँ भगवान् के अवतरित होने के कारण को बतलाती हैं। वे *भगवद्गीता* (४.७) में भगवान् के कथन की पुष्टि करती हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

“हे भरतवंशी! जब जब धर्म का हास होता है और अधर्म का प्राधान्य होने लगता है तब तब मैं अवतार लेता हूँ।”

श्रीशुक उवाच

प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ।
मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशीधेनुकैः ॥ १ ॥
अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ।
यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; प्रलम्ब—प्रलम्ब नामक असुर; बक—बक नामक असुर; चाणूर—चाणूर नामक असुर; तृणावर्त—तृणावर्त नामक असुर; महाशनैः—अघासुर द्वारा; मुष्टिक—मुष्टिक नामक असुर; अरिष्ट—अरिष्ट असुर; द्विविद—द्विविद असुर जैसे; पूतना—पूतना; केशी—केशी; धेनुकैः—धेनुक द्वारा; अन्यैः च—तथा अन्यो द्वारा; असुर-भूपालैः—पृथ्वी पर असुर राजाओं द्वारा; बाण—बाण असुर; भौम—भौमासुर; आदिभिः—इत्यादि के द्वारा; युतः—से सहायता प्राप्त करके; यदूनाम्—यदुवंश के राजाओं का; कदनम्—उत्पीड़न; चक्रे—किया; बली—अत्यन्त शक्तिशाली; मागध-संश्रयः—मगध के राजा जरासन्ध के संरक्षण में।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : मगधराज जरासन्ध के संरक्षण में शक्तिशाली कंस द्वारा यदुवंशी राजाओं को सताया जाने लगा। इसमें उसे प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी, धेनुक, बाणासुर, नरकासुर तथा पृथ्वी के अनेक दूसरे असुर राजाओं का सहयोग प्राप्त था।

तात्पर्य : इस श्लोक से भगवद्गीता (४.७-८) में आये भगवान् के निम्नलिखित कथन की पुष्टि होती है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमर्धमस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

“हे भरतवंशी! जब जब धर्म का हास होता है और अधर्म की प्रधानता हो जाती है तब तब मैं अवतार लेता हूँ। मैं पुण्यात्माओं का उद्धार करने, दुष्टों का विनाश करने एवं धर्म की फिर से स्थापना करने के लिए युग-युग में अवतरित होता हूँ।”

इस भौतिक जगत का पालन करने के पीछे भगवान् का उद्देश्य है कि वे हर एक को भगवद्धाम

वापस जाने का अवसर प्रदान करें किन्तु दुर्भाग्यवश राजा तथा राजनेता भगवान् के उद्देश्य में बाधक बनते हैं। अतः सबकुछ ठीक करने के लिए भगवान् स्वयं या अपने अंशों के साथ प्रकट होते हैं। इसीलिए कहा गया है—

गर्भ संचार्य रोहिण्यां देवक्या योगमायया ।

तस्याः कुक्षि गतः कृष्णो द्वितीयोविबुधे स्तुतः ॥

“योगमाया की शक्ति से बलदेव को रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित करने के बाद कृष्ण देवकी के गर्भ में प्रकट हुए।” यदुभिः स व्यरुध्यत। यदुवंशी सारे राजा भक्त थे किन्तु शाल्व जैसे अनेक शक्तिशाली असुर उन्हें सताने लगे। उस समय कंस का श्वसुर जरासन्ध अत्यधिक शक्तिशाली था अतः कंस ने यदुवंशी राजाओं को सताने में उसके संरक्षण का तथा असुरों की सहायता का लाभ उठाया। ये असुर स्वभावतः देवताओं की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली प्रतीत होते थे किन्तु अन्ततः भगवान् से सहायता प्राप्त होने से ये असुर पराजित हो गये और देवता विजयी रहे।

ते पीडिता निविविशुः कुरुपञ्चालकेकयान् ।

शाल्वान्विदभान्निषधान्विदेहान्कोशलानपि ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ते—यदुवंशी राजा; पीडिताः—सताये हुए; निविविशुः—राज्यों में घुस आये; कुरु-पञ्चाल—कुरुओं तथा पंचालों द्वारा अधिकृत देशों में; केकयान्—केकयों के देश; शाल्वान्—शाल्वों द्वारा अधिकृत देश; विदभान्—विदर्भों द्वारा अधिकृत देश; निषधान्—निषधों द्वारा अधिकृत देश; विदेहान्—विदेहों का देश; कोशलान् अपि—कोशलों द्वारा अधिकृत देशों में भी।

असुर राजाओं द्वारा सताये जाने पर यादवों ने अपना राज्य छोड़ दिया और कुरुओं, पञ्चालों, केकयों, शाल्वों, विदर्भों, निषधों, विदेहों तथा कोशलों के राज्य में प्रविष्ट हुए।

एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासते ।

हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥

सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ।

गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

एके—कुछ; तम्—उस कंस को; अनुरुन्धानाः—अपनी नीति का पालन करने वाले; ज्ञातयः—सम्बन्धीजन; पर्युपासते—उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगे; हतेषु—मारे जाकर; षट्सु—छः; बालेषु—बालक; देवक्याः—देवकी द्वारा उत्पन्न; औग्रसेनिना—उग्रसेन के पुत्र (कंस) द्वारा; सप्तमः—सातवाँ; वैष्णवम्—भगवान् विष्णु के; धाम—अंश; यम्—जिसको; अनन्तम्—अनन्त नाम से; प्रचक्षते—विख्यात है; गर्भः—गर्भ; बभूव—था; देवक्याः—देवकी का; हर्ष-शोक-विवर्धनः—एकसाथ हर्ष तथा शोक को बढ़ाने वाला।

किन्तु उनके कुछ सम्बन्धी कंस के इशारों पर चलने लगे और उसकी नौकरी करने लगे। जब उग्रसेन का पुत्र कंस देवकी के छह पुत्रों का वध कर चुका तो देवकी के गर्भ में कृष्ण का स्वांश प्रविष्ट हुआ जिससे उसमें कभी सुख की तो कभी दुख की वृद्धि होती। यह स्वांश महान् मुनियों द्वारा अनन्त नाम से जाना जाता है और कृष्ण के द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित है।

तात्पर्य : कुछ प्रमुख भक्तगण, यथा अक्रूर कंस के साथ उसकी तुष्टि के लिए रहते रहे। ऐसा उन्होंने कई उद्देश्यों से किया। उन सबों को आशा थी कि कंस द्वारा देवकी के अन्य पुत्रों के वध के पश्चात् आठवें पुत्र के रूप में भगवान् प्रकट होंगे अतः वे उत्सुकतापूर्वक उनके प्राकट्य की प्रतीक्षा करने लगे। कंस के साथ रहने से वे भगवान् को जन्म लेते तथा बाललीलाएँ करते देख सकेंगे और बाद में अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को वृन्दावन से मथुरा ले जाने के लिए जाएँगे। *पर्युपासते* शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह सूचित करता है कि कुछ भक्त कंस के पास इसीलिए रुकना चाहते थे कि वे भगवान् की इन सब लीलाओं को देख सकें। कंस ने जिन छह बालकों का वध किया था वे पूर्वजन्म में मरीचि के पुत्र थे किन्तु एक ब्राह्मण के शापवश उन्हें हिरण्यकशिपु के नातियों के रूप में जन्म लेना पड़ा। कंस ने कालनेमि के रूप में जन्म लिया था और अब वह अपने ही पुत्रों को मारने के लिए विवश था। यही वह रहस्यपूर्ण बात थी। ज्योंही देवकी के पुत्र मारे जाते, वे अपने मूल स्थान लौट जाते। भक्तगण इसे भी देखना चाहते थे। सामान्यतया कोई भी व्यक्ति अपने भांजों को नहीं मारता किन्तु कंस इतना क्रूर था कि बिना किसी झिझक के ऐसा करता था। अनन्त या संकर्षण द्वितीय चतुर्व्यूह से सम्बन्धित हैं। यह अनुभवी टीकाकारों का मत है।

भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ।

यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—श्रीकृष्ण ने; अपि—भी; विश्वात्मा—हर एक का परमात्मा; विदित्वा—यदुओं तथा उनके अन्य भक्तों की स्थिति जानकर; कंस-जम्—कंस के कारण; भयम्—डर; यदूनाम्—यदुओं के; निज-नाथानाम्—अपने परम आश्रय स्वरूप; योगमायाम्—कृष्ण की आध्यात्मिक शक्ति योगमाया को; समादिशत्—आदेश दिया।

कंस के आक्रमण से अपने निजी भक्त, यदुओं, की रक्षा करने के लिए विश्वात्मा भगवान् ने योगमाया को इस प्रकार आदेश दिया।

तात्पर्य : श्रील सनातन गोस्वामी ने भगवान् अपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् की टीका इस

प्रकार की है। भगवान् स्वयम् श्रीकृष्ण हैं। *कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।* वे विश्वात्मा हैं क्योंकि उनका स्वांश परमात्मा के रूप में विस्तार करता है। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता (१३.३)* से होती है। *क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।* भगवान् कृष्ण सभी जीवों के क्षेत्रज्ञ अर्थात् परमात्मा हैं। वे भगवान् के समस्त अंशों के आदि उद्गम हैं। विष्णु के लाखों अंश हैं यथा संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा वासुदेव किन्तु इस भौतिक जगत में विश्वात्मा तो क्षीरोदकशायी विष्णु हैं। जैसाकि *भगवद्गीता (१८.६१)* में कहा गया है—*ईश्वरः सर्वभूतेषु हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—*हे अर्जुन! परमेश्वर समस्त जीवों के हृदय में स्थित हैं। अपने अंश *विष्णुतत्त्व* के रूप में कृष्ण वस्तुतः विश्वात्मा हैं फिर भी अपने भक्तों के स्नेहवश वे उन्हें निर्देश देने के लिए परमात्मा का कार्य करते हैं (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च*)।

परमात्मा के कार्य क्षीरोदकशायी विष्णु से सम्बन्धित होते हैं किन्तु कृष्ण ने अपनी भक्त देवकी पर कृपा की क्योंकि वे जानते थे कि कंस द्वारा सतायी जाने के कारण देवकी डरी हुई है। शुद्ध भक्त भौतिक अस्तित्व से सदैव डरता रहता है। कोई यह नहीं जानता कि आगे क्या होगा क्योंकि उसे किसी भी क्षण अपना शरीर बदलना पड़ सकता है (*तथा देहान्तर-प्राप्तिः*)। यह जानकर शुद्ध भक्त इस तरह कार्य करता है कि कहीं उसे दूसरा शरीर धारण करके संसार के कष्ट न भोगने पड़ें जिससे उसका जीवन दूषित हो जाए। यही *भयम्* अर्थात् डर है। *भयं द्वितीयाभिनवेशतः स्यात्* (*भागवत ११.२.३७*)। यह भय संसार के कारण है। ठीक ठीक कहें तो हर एक को इस संसार से सतर्क और भयभीत रहना चाहिए। इस तरह संसार को न जानने से हर व्यक्ति प्रभावित होता है किन्तु भगवान् कृष्ण अपने भक्तों की रक्षा के लिए सदैव सतर्क रहते हैं। अपने भक्तों की रक्षा करने के लिए कृष्ण अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु तथा वत्सल हैं कि वे उन्हें बुद्धि प्रदान करते हैं जिससे वे उन्हें एक क्षण भी भुलाये बिना भौतिक जगत में रहते रहें। भगवान् ने *भगवद्गीता (१०.११)* में कहा है—

तेषां एवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः ।

नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥

“मैं उन पर कृपा के कारण उनके हृदयों में रहकर ज्ञान रूपी दीपक से अज्ञान से उत्पन्न अंधकार को दूर करता हूँ।”

योग शब्द का अर्थ है “कड़ी”। कोई भी योग पद्धति भगवान् से अपने टूटे सम्बन्ध को पुनः जोड़ने का प्रयास है। योग के अनेक भेद हैं जिनमें से भक्तियोग सर्वश्रेष्ठ है। अन्य योग पद्धतियों में सिद्धि के पूर्व विविध प्रकार की विधियाँ अपनायी पड़ती हैं किन्तु भक्तियोग तो प्रत्यक्ष होता है। भगवद्गीता (६.४७) में भगवान् कहते हैं—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

“समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मेरी पूजा करते हुए मुझमें निष्ठा रखता है, वह योग में मुझसे भलीभाँति जुड़ा रहता है और वही सर्वोच्च है।” भक्तियोगी के लिए अगले जन्म में मनुष्य-शरीर मिलना निश्चित है जैसाकि कृष्ण ने कहा है (शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते)। योगमाया भगवान् की आध्यात्मिक शक्ति है। भगवान् अपने भक्तों पर स्नेह के कारण निरन्तर उनके सम्पर्क में रहते हैं अन्यथा उनकी माया शक्ति इतनी प्रबल है कि वह ब्रह्मा जैसे बड़े बड़े देवताओं को भी मोहित कर देती है। अतः भगवान् की शक्ति योगमाया कहलाती है। चूँकि भगवान् विश्वात्मा हैं अतएव उन्होंने योगमाया को आदेश दिया कि वह देवकी की रक्षा करे।

गच्छ देवि ब्रजं भद्रे गोपगोभिरलङ्क तम् ।

रोहिणी वसुदेवस्य भार्यास्ते नन्दगोकुले ।

अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

गच्छ—अब जाओ; देवि—हे समस्त जगत की पूज्या; ब्रजम्—ब्रज भूमि में; भद्रे—हे समस्त जीवों का कल्याण करनेवाली; गोप-गोभिः—ग्वालों तथा गायों के साथ; अलङ्क तम्—अलंकृत, सज्जित; रोहिणी—रोहिणी; वसुदेवस्य—कृष्ण के पिता वसुदेव की; भार्या—पत्नियों में से एक; आस्ते—रह रही है; नन्द-गोकुले—गोकुल नाम से विख्यात महाराज नन्द के राज्य में जहाँ लाखों गायें पाली जाती हैं; अन्याः च—तथा अन्य पत्नियाँ; कंस-संविग्नाः—कंस के भय से; विवरेषु—एकान्त स्थानों में; वसन्ति—रह रही हैं; हि—निस्सन्देह।

भगवान् ने योगमाया को आदेश दिया: हे समस्त जगत द्वारा पूज्या तथा समस्त जीवों को सौभाग्य प्रदान करने वाली शक्ति, तुम ब्रज जाओ जहाँ अनेक ग्वाले तथा उनकी पत्नियाँ रहती हैं। उस सुन्दर प्रदेश में जहाँ अनेक गौवें निवास करती हैं, वसुदेव की पत्नी रोहिणी नन्द महाराज के घर में रह रही हैं। वसुदेव की अन्य पत्नियाँ भी कंस के भय से वहीं अज्ञातवास कर रही हैं। कृपा करके वहाँ जाओ।

तात्पर्य : राजा नन्द का आवास नन्दगोकुल स्वयं अत्यन्त सुन्दर था और जब योगमाया को वहाँ जाकर भक्तों को अभय प्रदान करने के लिए आदेश दिया गया तो यह और भी सुन्दर तथा सुरक्षित हो गया। चूँकि योगमाया में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने की क्षमता थी इसलिए उसे नन्दगोकुल के यहाँ जाने का आदेश दिया गया।

देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ।
तत्सन्निकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

देवक्या:—देवकी के; जठरे—गर्भ में; गर्भम्—भ्रूण; शेष-आख्यम्—कृष्ण के अंश, शेष नाम से विख्यात; धाम—अंश; मामकम्—मेरा; तत्—उसको; सन्निकृष्य—निकाल करके; रोहिण्या:—रोहिणी के; उदरे—गर्भ के भीतर; सन्निवेशय—बिना कठिनाई के स्थानान्तरित करो।

देवकी के गर्भ में संकर्षण या शेष नाम का मेरा अंश है। तुम उसे बिना किसी कठिनाई के रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दो।

तात्पर्य : कृष्ण के प्रथम अंश बलदेव हैं, जो शेष भी कहलाते हैं। भगवान् का शेष अवतार सारे ब्रह्मांड को धारण करता है और इस अवतार की शाश्वत माता हैं माता रोहिणी। भगवान् ने योगमाया से कहा, “चूँकि मैं देवकी के गर्भ में जा रहा हूँ अतः शेष अवतार पहले ही वहाँ पहुँच चुके हैं और उन्होंने वहाँ मेरे रहने की पूरी व्यवस्था कर दी है। अब उन्हें अपनी माता रोहिणी के गर्भ में प्रवेश करना चाहिए।”

इस सम्बन्ध में कोई पूछ सकता है कि भगवान् जो सदैव दिव्य रूप में स्थित हैं, किस तरह देवकी के उस गर्भ में प्रवेश पा सके जिसमें पहले ही छह असुर (षड्गर्भ) वास कर चुके थे। तो क्या इसका यह अर्थ हुआ कि ये षड्गर्भासुर भगवान् के दिव्य शरीर के तुल्य थे? इसका उत्तर श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने दिया है, जो इस प्रकार है—

समग्र सृष्टि तथा इसके व्यष्टि अंश भी भगवान् की शक्ति के विस्तार हैं। इसलिए भौतिक जगत में भगवान् प्रवेश करके भी ऐसा नहीं करते। इसकी व्याख्या भगवान् ने स्वयं *भगवद्गीता* (९.४-५) में की है—

माया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ॥

न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।

भूत-भृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः ॥

“यह समग्र ब्रह्माण्ड मेरे अप्रकट रूप में मुझसे व्याप्त है। सारे जीव मुझमें हैं किन्तु मैं उनमें नहीं हूँ। फिर भी हर सृजित वस्तु मुझमें टिकी नहीं है। मेरे योग-ऐश्वर्य को तो देखो! यद्यपि मैं सारे जीवों का पालक हूँ और सर्वत्र रहता हूँ किन्तु मेरी आत्मा सृष्टि का उद्गम है।” *सर्वं खल्विदं ब्रह्म*। हर वस्तु ब्रह्म अर्थात् भगवान् का अंश है फिर भी हर वस्तु ईश्वर नहीं है और ईश्वर सर्वत्र हैं भी नहीं। हर वस्तु उन पर टिकी है और नहीं भी टिकी है। इसे केवल *अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन* द्वारा समझाया जा सकता है। फिर भी ऐसे सत्य को शुद्ध भक्त के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं समझ सकता क्योंकि *भगवद्गीता* (१८.५५) में भगवान् कहते हैं— *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*—भगवान् को उनके असली रूप में केवल भक्ति द्वारा समझा जा सकता है। यद्यपि सामान्य व्यक्ति भगवान् को नहीं समझ सकते किन्तु इस सिद्धान्त को शास्त्रों के कथन से समझा जा सकता है।

शुद्ध भक्त भक्तियोग की नौ विभिन्न विधियाँ सम्पन्न करके (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पाद-सेवनम् । अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्*) दिव्य पद पर आसीन रहता है। इस तरह भक्ति को प्राप्त भक्त इस भौतिक जगत में रहते हुए भी उसमें नहीं रहता। इतने पर भी भक्त सदा डरता रहता है कि भौतिक जगत से सान्निध्य होने से उसे अनेक कल्मष प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए वह सदैव भय के कारण चौकन्ना रहता है, जिससे उसका भौतिक सान्निध्य क्रमशः घटता जाता है।

प्रतीक रूप में माता देवकी का कंस से निरन्तर डरना उन्हें शुद्ध बना रहा था। शुद्ध भक्त को सदैव भौतिक सान्निध्य से डरते रहना चाहिए। इससे भौतिक सान्निध्य में रहनेवाले सारे असुरों का वध हो जाएगा जिस तरह कंस के द्वारा षड्गर्भासुरों का वध हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि मरीचि मन से प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में, मरीचि मन का अवतार है। मरीचि के छह पुत्र हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद एवं मात्सर्य। भगवान् शुद्ध भक्ति से प्रकट होते हैं। इसकी पुष्टि वेदों द्वारा हुई है— *भक्तिरेवैनं दर्शयति*। केवल भक्ति से ही मनुष्य को भगवान् का सान्निध्य प्राप्त हो सकता है। भगवान् देवकी के गर्भ से प्रकट हुए इसलिए देवकी भक्ति की प्रतीक हैं और कंस भौतिक भय का प्रतीक है। जब भक्त भौतिक सान्निध्य से डरता रहता है, तो उसका असली पद—भक्ति—प्रकट होता है, जिससे उसमें

भौतिक भोग के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाती है। जब मरीचि के छहों पुत्रों का ऐसे भय द्वारा वध हो जाता है और मनुष्य भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाता है, तो भक्ति के गर्भ से भगवान् उत्पन्न होते हैं। इस तरह देवकी का सातवाँ गर्भ भगवान् के प्राकट्य को सूचित करता है। जब काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद तथा मात्सर्य—ये छह पुत्र मार डाले जाते हैं, तो भगवान् के प्राकट्य हेतु शेष अवतार उपयुक्त परिस्थिति उत्पन्न करता है। दूसरे शब्दों में, जब मनुष्य में उसकी सहज कृष्णचेतना जागृत होती है, तो भगवान् कृष्ण प्रकट होते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने यही व्याख्या की है।

अथाहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ।

प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

अथ—तत्पश्चात्; अहम्—मैं; अंश-भागेन—अपने अंश द्वारा; देवक्याः—देवकी का; पुत्रताम्—पुत्र; शुभे—हे कल्याणी योगमाया; प्राप्स्यामि—बनूँगा; त्वम्—तुम; यशोदायाम्—माता यशोदा के गर्भ में; नन्द-पत्न्याम्—महाराज नन्द की पत्नी; भविष्यसि—तुम भी प्रकट होगी।

हे सर्व-कल्याणी योगमाया, तब मैं अपने छहों ऐश्वर्यों से युक्त होकर देवकी के पुत्र रूप में प्रकट होऊँगा और तुम महाराज नन्द की महारानी माता यशोदा की पुत्री के रूप में प्रकट होगी।

तात्पर्य : इस श्लोक में अंश-भागेन शब्द महत्त्वपूर्ण है। भगवद्गीता (१०.४२) में भगवान् कहते हैं—

अथवा बहुनैतेन किम् ज्ञातेन तवार्जुन।

विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥

“लेकिन हे अर्जुन! इस विस्तृत ज्ञान की क्या आवश्यकता है? मैं अपने एक अंश से ही इस सारे विश्व में व्याप्त हूँ और इसको धारण करता हूँ।” भगवान् की शक्ति के अंश रूप में ही हर वस्तु है। देवकी के गर्भ में भगवान् कृष्ण के आने के लिए ब्रह्मा ने भूमिका निभाई क्योंकि उन्होंने क्षीरसागर के तट पर भगवान् से प्रार्थना की कि वे प्रकट हों। भगवान् के प्रथम अंश बलदेव ने भी भूमिका निभाई। इसी तरह यशोदा की पुत्री रूप में उत्पन्न योगमाया ने भी भूमिका निभाई। इस तरह से जीवतत्त्व, विष्णुतत्त्व तथा शक्तितत्त्व—ये तीनों भगवान् से मिल गये और जब कृष्ण प्रकट होते हैं, तो अपने इन संयुक्त अंशों के समेत प्रकट होते हैं। जैसाकि पिछले श्लोकों में बतलाया जा चुका है योगमाया से कहा गया कि वह देवकी के गर्भ से संकर्षण, बलदेव, को निकाल करके रोहिणी के गर्भ में

स्थानान्तरित करे और यह उसके लिए भारी कार्य था। वह समझ ही नहीं पा रही थी कि संकर्षण को किस तरह खींचे। इसीलिए कृष्ण ने उसे शुभे कह कर सम्बोधित किया, “तुम्हारा कल्याण हो, तुम मुझसे शक्ति प्राप्त करो और तुम इस काम को कर सकोगी।” भगवत्कृपा होने पर कोई भी व्यक्ति कोई भी कार्य कर सकता है क्योंकि भगवान् हर वस्तु में अपने अंशों से (अंशभागेन) उपस्थित रहते हैं और उसे अपनी परम इच्छा से घटाते-बढ़ाते रहते हैं। बलराम कृष्ण से केवल पन्द्रह दिन बड़े थे। कृष्ण के आशीर्वाद से योगमाया माता यशोदा की पुत्री बनी किन्तु परमेश्वर की इच्छा से वह अपने पिता-माता का प्रेम न पा सकी। यद्यपि कृष्ण माता यशोदा के गर्भ से उत्पन्न नहीं हुए थे फिर भी उन्हें माता यशोदा तथा नन्द का प्रेम प्राप्त हुआ। कृष्ण के आशीर्वाद से योगमाया को माता यशोदा की पुत्री होने का गौरव प्राप्त हो सका। यशोदा भी कृष्ण के आशीर्वाद से प्रसिद्ध हो गई। यशोदा का अर्थ है “यश देने वाली।”

अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवश्वरीम् ।

धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

अर्चिष्यन्ति—पूजा करेंगे; मनुष्याः—मानव समाज; त्वाम्—तुम को; सर्व-काम-वर-ईश्वरीम्—सारी भौतिक इच्छाओं को पूरा करने वाले देवताओं में सर्वश्रेष्ठ होने से; धूप—सुगन्धित द्रव्य से; उपहार—भेंट से; बलिभिः—यज्ञ द्वारा विविध प्रकार की पूजा से; सर्व-काम—सारी भौतिक इच्छाओं में से; वर—आशीर्वाद; प्रदाम्—प्रदान कर सकने वाली।

सामान्य लोग पशुओं की बलि करके विविध सामग्री से तुम्हारी भव्य पूजा करेंगे क्योंकि तुम हर एक की भौतिक इच्छाएँ पूरी करने में सर्वोपरि हो।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता (७.२०) में कहा गया है—*कामैस्त्वैस्त्वैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*—जिनके मन भौतिक इच्छाओं से विकृत हो चुके होते हैं, वे देवताओं की शरण में जाते हैं।” अतः मनुष्य शब्द सामान्य व्यक्ति के लिए आया है, जो जीवन के असली लक्ष्य को नहीं जानता। ऐसा व्यक्ति उच्च परिवार में जन्म लेकर भौतिक आनन्द उठाना चाहता है जहाँ शिक्षा, सौन्दर्य तथा प्रचुर ऐश्वर्य भोगा जा सकता है, जो इस भौतिक संसार में वांछनीय हैं। जीवन के असली लक्ष्य को जो भूल चुका है वैसा व्यक्ति *मायाशक्ति* अर्थात् देवी दुर्गा की पूजा विविध कार्यों के लिए विविध स्थानों तथा नामों से कर सकता है। जिस तरह कृष्ण की पूजा हेतु भारत में अनेक पवित्र स्थान हैं उसी तरह दुर्गा देवी या यशोदा की पुत्री के रूप में उत्पन्न मायादेवी की पूजा के भी अनेक पवित्र स्थल हैं।

कंस को छलने के बाद मायादेवी सामान्य लोगों से नियमित पूजा कराने के लिए अनेक स्थानों में, विशेष रूप से विन्ध्याचल में विकीर्ण हो गई। मनुष्य को तो वास्तव में *आत्मतत्त्व* अर्थात् आत्मा का सत्य तथा परमात्मा को जानने में रुचि रखनी चाहिए। जो लोग आत्मतत्त्व में रुचि रखते हैं, वे भगवान् की पूजा करते हैं (*यस्मिन् विज्ञाते सर्वमेवं विज्ञातं भवति*)। फिर भी जैसाकि इस अध्याय के अगले श्लोक में बताया गया है, जो लोग आत्मतत्त्व को नहीं समझ सकते (*अपश्यताम् आत्मतत्त्वम्*) वे योगमाया के विभिन्न रूपों की पूजा करते हैं। इसीलिए *श्रीमद्भगवत* (२.१.२) में कहा गया है—

श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ।

अपश्यताम् आत्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥

“हे राजन्! जो लोग भौतिक संसार में फँसे हैं, वे परम सत्य के ज्ञान के प्रति अंधे होने से मानव समाज में अनेक प्रकार के विषयों को सुनते रहते हैं।” जो लोग इस भौतिक संसार में बने रहना चाहते हैं और आध्यात्मिक मुक्ति में रुचि नहीं रखते उनके पास करने के लिए अनेक कार्य होते हैं किन्तु जो आध्यात्मिक मुक्ति में रुचि रखता है उसका एकमात्र कर्तव्य होता है कि वह पूरी तरह कृष्ण की शरण ग्रहण कर ले (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज*)। ऐसा व्यक्ति भौतिक भोग में रुचि नहीं रखता।

नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ।

दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥

कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ।

माया नारायणीशानी शारदेत्यम्बिकेति च ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

नामधेयानि—विभिन्न नाम; कुर्वन्ति—देंगे; स्थानानि—विभिन्न स्थानों में; च—भी; नराः—भौतिक भोग में रुचि रखने वाले लोग; भुवि—पृथ्वी पर; दुर्गा इति—दुर्गा नाम; भद्रकाली इति—भद्रकाली नाम; विजया—विजया नाम; वैष्णवी इति—वैष्णवी नाम; च—भी; कुमुदा—कुमुदा; चण्डिका—चण्डिका; कृष्णा—कृष्णा; माधवी—माधवी; कन्यका इति—कन्यका या कन्याकुमारी; च—भी; माया—माया; नारायणी—नारायणी; ईशानी—ईशानी; शारदा—शारदा; इति—इस प्रकार; अम्बिका—अम्बिका; इति—भी; च—तथा।

भगवान् कृष्ण ने मायादेवी को यह कहकर आशीर्वाद दिया: लोग तुम्हें पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों में विभिन्न नामों से पुकारेंगे—यथा दुर्गा, भद्रकाली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा तथा अम्बिका।

तात्पर्य : चूँकि कृष्ण तथा उनकी शक्ति साथ साथ प्रकट हुए अतः लोगों ने सामान्यतया दो समूह

बना रखे हैं—शाक्त तथा वैष्णव—और कभी कभी दोनों में स्पर्धा चलती है। अनिवार्य रूप से, जो लोग भौतिक भोग में रुचि रखते हैं, वे शाक्त हैं और जो आध्यात्मिक मोक्ष तथा आध्यात्मिक धाम प्राप्त करने में रुचि रखते हैं, वे वैष्णव हैं। चूँकि लोग सामान्यतया भौतिक भोग में रुचि रखते हैं अतएव वे भगवान् की शक्ति मायादेवी की पूजा करते हैं। किन्तु वैष्णव जन शुद्धशाक्त अथवा शुद्ध भक्त होते हैं क्योंकि हरे कृष्ण महामंत्र भगवान् की शक्ति हरा की पूजा को सूचित करता है। प्रत्येक वैष्णव भगवान् की शक्ति से प्रार्थना करता है कि वह ऐसा अवसर प्रदान करे जिससे वह भगवान् की सेवा उनकी आध्यात्मिक शक्ति समेत कर सके। इसलिए सभी वैष्णव जन राधा-कृष्ण, सीता-राम, लक्ष्मी-नारायण तथा रुक्मिणी-द्वारिकाधीश जैसे अर्चाविग्रहों की पूजा करते हैं किन्तु दुर्गाशाक्त लोग भौतिकशक्ति की पूजा विविध नामों से करते हैं।

मायादेवी जिन-जिन नामों से विभिन्न स्थानों में जानी जाती हैं उसकी सूची वल्लभाचार्य ने दी है। वे वाराणसी में दुर्गा, अवन्ती में भद्रकाली, उड़ीसा में विजया और कुलहापुर में वैष्णवी या महालक्ष्मी कही जाती हैं। (महालक्ष्मी तथा अम्बिका की प्रतिनिधि मुम्बई में हैं) वे कामरूप प्रदेश में चण्डिका, उत्तर भारत में शारदा तथा कुमारी अन्तरीप में कन्यका कहलाती हैं। इस तरह वे विभिन्न स्थानों में विभिन्न नामों के अनुसार जानी जाती हैं।

श्रील विजयध्वज तीर्थपाद ने *पद-रत्नावली टीका* में विभिन्न नामों की व्याख्या की है। *माया* को दुर्गा इसलिए कहते हैं क्योंकि उन्हें कठिनाई से प्राप्त किया जाता है। उन्हें शुभ होने से भद्रा और गहरे नीले रंग की होने से काली कहा जाता है। अत्यन्त शक्तिशाली होने से विजया और विष्णु की विभिन्न शक्तियों में से एक होने के कारण वे वैष्णवी कहलाती हैं। भौतिक जगत का भोग करने तथा भोग की सुविधाएँ प्रदान करने के कारण कुमुदा, शत्रुओं (असुरों) के प्रति कठोर होने के कारण चण्डिका और समस्त भौतिक सुविधाएँ प्रदान करने के कारण वे कृष्णा कहलाती हैं। इस तरह भौतिक शक्ति के विविध नाम हैं और वे पृथ्वी पर विभिन्न स्थानों में स्थित हैं।

गर्भसङ्कर्षणात्तं वै प्राहुः सङ्कर्षणं भुवि ।

रामेति लोकरमणाद्बलभद्रं बलोच्छ्रयात् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

गर्भ-सङ्कर्षणात्—देवकी के गर्भ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में पहुँचाये जाने के कारण; तम्—उसको (रोहिणीनन्दन को); वै—निस्सन्देह; प्राहुः—लोग कहेंगे; सङ्कर्षणम्—संकर्षण को; भुवि—संसार में; राम इति—राम कहलाएगा; लोक-रमणात्—लोगों को भक्त बनने में समर्थ बनाने से; बलभद्रम्—बलभद्र कहलाएगा; बल-उच्छ्रयात्—प्रचुर बल के कारण।

देवकी के गर्भ से निकाल कर रोहिणी के गर्भ में भेजे जाने के कारण रोहिणी का पुत्र संकर्षण भी कहलाएगा। वह गोकुल के सारे निवासियों को प्रसन्न रखने की क्षमता होने के कारण राम कहलाएगा और अपनी प्रचुर शारीरिक शक्ति के कारण बलभद्र कहलाएगा।

तात्पर्य : बलराम को संकर्षण, बलराम या कभी-कभी राम नाम से विख्यात होने के ये कुछ कारण हैं। महामंत्र—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/ हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—में जब राम को बलराम कहा जाता है, तो कुछ लोग आपत्ति करते हैं। भले ही भगवान् राम के भक्तों को इसमें आपत्ति हो किन्तु बलराम तथा भगवान् राम में कोई अन्तर नहीं है। श्रीमद्भागवत के इस स्थल में बलराम को राम भी कहा गया है (रामेति)। अतः भगवान् बलराम को भगवान् राम कहना बनावटी नहीं है। जयदेव गोस्वामी ने भी तीन रामों का—परशुराम, रघुपति राम तथा बलराम का—उल्लेख किया है। ये सभी राम हैं।

सन्दिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ।

प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाकरोत् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

सन्दिष्टा—आदेश दिये जाने पर; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; तथा इति—ऐसा ही हो; ॐ—ॐ मंत्र; इति—इस प्रकार; तत्-वचः—उनके शब्द; प्रतिगृह्य—मानकर; परिक्रम्य—उनकी परिक्रमा करके; गाम्—पृथ्वी पर; गता—तुरन्त चली गई; तत्—भगवान् द्वारा दिया गया आदेश; तथा—उसी तरह; अकरोत्—किया।

भगवान् से इस तरह आदेश पाकर योगमाया ने उसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसने वैदिक मंत्र ॐ के साथ पुष्टि की कि उससे जो कहा गया है उसे वह करेगी। इसके बाद उसने पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की परिक्रमा की और वह पृथ्वी पर स्थित नन्दगोकुल नामक स्थान के लिए चल पड़ी। वहाँ उसने वैसा ही किया जैसा कि उसे आदेश मिला था।

तात्पर्य : भगवान् का आदेश पाकर योगमाया ने अपनी दोहरी सहमति “हाँ मैं आपका कहना करूँगी” तथा ॐ कहकर व्यक्त की। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका है कि ॐ वैदिक पुष्टि का सूचक है। इस तरह योगमाया ने भगवान् के आदेश को वैदिक आदेश के रूप में ग्रहण किया। यह तथ्य है कि भगवान् जो भी कहते हैं वह वैदिक आदेश होता है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए।

वैदिक आदेशों में न तो कोई त्रुटि है न कोई भ्रान्ति और न धोखा-धड़ी। इसलिए वैदिक प्रमाण को समझे बिना शास्त्र का उद्धरण देना निरर्थक है। वैदिक आदेशों की उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए प्रत्युत वेदों में दिये गये आदेशों को दृढ़ता से पूरा करना चाहिए। *भगवद्गीता* (१६.२४) में कहा गया है—

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।

ज्ञात्वा शास्त्र-विधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

“मनुष्य को चाहिए कि शास्त्रों के नियमों के द्वारा कर्तव्य तथा अकर्तव्य को समझे। ऐसे विधि-विधानों को जानते हुए मनुष्य को चाहिए उनके अनुसार कार्य करे जिससे वह क्रमशः ऊपर उठ सके।”

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ।

अहो विस्त्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुकुशुः ॥ १५ ॥

शब्दार्थ

गर्भे—जब गर्भ; प्रणीते—ले जाया गया; देवक्याः—देवकी का; रोहिणीम्—रोहिणी के गर्भ में; योग-निद्रया—योगमाया द्वारा; अहो—हाय; विस्त्रंसितः—नष्ट हो गया; गर्भः—गर्भ; इति—इस प्रकार; पौराः—घर के रहने वाले; विचुकुशुः—विलाप करने लगे।

जब योगमाया द्वारा देवकी का बालक खींच करके रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया तो देवकी को लगा कि उसे गर्भपात हो गया। फलतः महल के सारे निवासी जोर-जोर से यह कहकर विलाप करने लगे, “हाय! देवकी का बच्चा जाता रहा।”

तात्पर्य : महल के सारे वासियों में कंस भी सम्मिलित था। जब सारे लोग विलाप कर रहे थे तो दयावश कंस भी यह सोचकर उनके साथ विलाप करने लगा कि हो न हो दवाओं के कारण या अन्य किसी बाहरी कारण से देवकी का यह गर्भपात हो गया। किन्तु *हरिवंश* में योगमाया द्वारा देवकी के गर्भ से बालक को खींच करके रोहिणी के सात मास के गर्भ में स्थापित करने की पूरी कथा वर्णित है। अर्धरात्रि में गहरी नींद में सोते सोते रोहिणी को लगा मानो सपने में उसे गर्भपात हो गया है। कुछ समय बाद जब वह जगी तो उसने देखा कि सचमुच ऐसा ही हो चुका है अतएव वह बहुत चिन्तित थी। किन्तु योगमाया ने उसे बतलाया, “हे शुभे! तुम्हारे बालक को पुनर्स्थापित किया जा रहा है। मैं देवकी के गर्भ से बालक खींच रही हूँ इसलिए तुम्हारे बालक का नाम संकर्षण होगा।”

योगनिद्रा शब्द महत्त्वपूर्ण है। जब आत्म-साक्षात्कार द्वारा मनुष्य अध्यात्म से पुनः जुड़ता है, तो

मनुष्य अपने जीवन को स्वप्नवत् मानता है। भगवद्गीता (२.६९) में कहा गया है—

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।

यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥

“जो सभी जीवों के लिए रात है, वह संयमी पुरुषों के लिए जगने का समय है और जो सारे जीवों के जगने का समय है, वही मुनियों के लिए रात होती है।” आत्म-साक्षात्कार की अवस्था योगनिद्रा कहलाती है। इस अवस्था में सारे भौतिक कार्यकलाप स्वप्नवत् प्रतीत होते हैं। इस तरह योगनिद्रा की व्याख्या योगमाया के रूप में की जा सकती है।

भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयङ्करः ।

आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—भी; विश्वात्मा—सारे जीवों के परमात्मा; भक्तानाम्—अपने भक्तों के; अभयम्-करः—भय के कारण को मारने वाले; आविवेश—प्रविष्ट हो गये; अंश-भागेन—अपने सारे ऐश्वर्यों के साथ (षडैश्वर्यपूर्ण); मनः—मन में; आनकदुन्दुभेः—वसुदेव के मन में।

इस तरह समस्त जीवों के परमात्मा तथा अपने भक्तों के भय को दूर करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् वसुदेव के मन में अपने पूर्ण ऐश्वर्य के समेत प्रविष्ट हो गये।

तात्पर्य : विश्वात्मा शब्द द्योतक है उसका जो हर एक हृदय में स्थित हो (ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति) । विश्वात्मा का दूसरा अर्थ है, “हर एक की एकमात्र प्रिय वस्तु”। इस वस्तु को भूल जाने से ही लोग इस भौतिक जगत में कष्ट भोग रहे हैं किन्तु यदि कोई कृष्ण प्रेम करने की अपनी पुरानी चेतना को जागृत कर लेता है और विश्वात्मा से अपने को जोड़ लेता है, तो वह पूर्ण बन जाता है। तृतीय स्कंध (३.२.१५) में भगवान् का वर्णन इस प्रकार हुआ है— परावरेणो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान्। अजन्मा होकर भी सबके प्रभु भगवान् भक्त के मन में प्रविष्ट होकर शिशु की तरह प्रकट हुए लगते हैं। प्रभु पहले से ही मन के भीतर रहते हैं अतएव भक्त के शरीर से उनका उत्पन्न होना आश्चर्यजनक नहीं लगता। आविवेश शब्द बताता है कि वे वसुदेव के मन के भीतर प्रकट हुए। वीर्यस्खलन की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। श्रीपाद् श्रीधरस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर का यही मत है। वैष्णवतोषणी में श्रील सनातन गोस्वामी कहते हैं कि वसुदेव के मन के भीतर चेतना जगी। श्रील वीरराघव आचार्य भी कहते हैं कि वसुदेव देवताओं में से एक थे और चेतना जागृत होने

के रूप में भगवान् उनके मन के भीतर प्रकट हुए।

स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ।

दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां सम्बभूव ह ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

सः—वह (वसुदेव); बिभ्रत्—धारण किये हुए; पौरुषम्—परम पुरुष सम्बन्धी; धाम—आध्यात्मिक तेज; भ्राजमानः—प्रकाशमान; यथा—जिस तरह; रविः—सूर्य-प्रकाश; दुरासदः—देखे जाने में भी अत्यन्त कठिन; अति-दुर्धर्षः—अत्यन्त कठिनाई से पास पहुँचने योग्य; भूतानाम्—समस्त जीवों में; सम्बभूव—बन गया; ह—निश्चित रूप से।

वसुदेव अपने हृदय के भीतर भगवान् के स्वरूप को धारण किये हुए भगवान् के दिव्य प्रकाशमान तेज को वहन कर रहे थे जिसके कारण वे सूर्य के समान चमकीले बन गये। अतः उनकी ओर लौकिक दृष्टि द्वारा देखना या उन तक पहुँचना कठिन था, यहाँ तक कि वे कंस जैसे पराक्रमी व्यक्ति के लिए ही नहीं, अपितु सारे जीवों के लिए भी दुर्धर्ष थे।

तात्पर्य : धाम शब्द महत्त्वपूर्ण है। धाम सूचक है भगवान् के रहने के स्थान का। श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में ही (१.१.१) कहा गया है—*धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि*। भगवान् के धाम में भौतिक शक्ति का कोई प्रभाव नहीं रहता (*धाम्नास्वेन सदा निरस्तकुहकम्*)। जहाँ कहीं भी भगवान् अपने नाम रूप, गुण या परिकर के साथ रहते हैं, वही तुरन्त धाम बन जाता है—उदाहरणार्थ, वृन्दावन धाम, द्वारका धाम, मथुरा धाम क्योंकि इन स्थानों में भगवान् का नाम, यश, गुण तथा परिकर सदैव उपस्थित रहते हैं। इसी तरह यदि भगवान् किसी को कुछ करने के लिए शक्ति प्रदान करते हैं, तो उसका हृदय धाम बन जाता है और वह इतना शक्तिशाली बन जाता है कि न केवल उसके शत्रु अपितु सारे लोग उसके कार्यकलापों को देखकर चकित रह जाते हैं। दुर्धर्ष होने के कारण उसके शत्रु चकित हुए बिना नहीं रहते जैसाकि *दुरासदोऽतिदुर्धर्षः* शब्दों के द्वारा बतलाया गया है।

पौरुषं धाम की व्याख्या अनेक आचार्यों ने की है। श्रीवीरराघव आचार्य कहते हैं कि ये शब्द भगवान् के तेज के सूचक हैं। विजयध्वज का कहना है कि ये शब्द *विष्णुतेज* के सूचक हैं और शुकदेव इसे *भगवत्स्वरूप* कहते हैं। वैष्णवतोषणी के अनुसार ये शब्द परमेश्वर के तेज के प्रभाव को सूचित करते हैं तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि ये भगवान् के प्राकट्य के सूचक हैं।

ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं

समाहितं शूरसुतेन देवी ।
 दधार सर्वात्मकमात्मभूतं
 काष्ठा यथानन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

ततः—तत्पश्चात्; जगत्-मङ्गलम्—ब्रह्माण्ड भर के जीवों के लिए मंगल; अच्युत-अंशम्—भगवान् जो अपने अंशों में उपस्थित छह ऐश्वर्यों से कभी वियुक्त नहीं होते; समाहितम्—पूरी तरह स्थानान्तरित; शूर-सुतेन—शूरसेन के पुत्र वसुदेव द्वारा; देवी—देवकी देवी ने; दधार—वहन किया; सर्व-आत्मकम्—सबों के परमात्मा; आत्म-भूतम्—समस्त कारणों के कारण; काष्ठा—पूर्व दिशा; यथा—जिस तरह; आनन्द-करम्—आनन्दमय (चन्द्रमा); मनस्तः—मन के भीतर स्थित होने से।

तत्पश्चात् परम तेजस्वी, सम्पूर्ण जगत के लिए सर्वमंगलमय समस्त ऐश्वर्यों से युक्त भगवान् अपने स्वांशों समेत वसुदेव के मन से देवकी के मन में स्थानान्तरित कर दिये गये। इस तरह वसुदेव से दीक्षा प्राप्त करने से देवकी सबों की आदि चेतना, समस्त कारणों के कारण भगवान् कृष्ण को अपने अन्तःकरण में धारण करने के कारण सुन्दर बन गई जिस तरह उदित चन्द्रमा को पाकर पूर्व दिशा सुन्दर बन जाती है।

तात्पर्य : मनस्तः शब्द बताता है कि भगवान् को वसुदेव के मन से देवकी के हृदय में स्थानान्तरित किया गया। हमें ध्यान देना होगा कि भगवान् को देवकी के हृदय में किसी सामान्य विधि के द्वारा नहीं अपितु दीक्षा द्वारा स्थानान्तरित किया गया। इस तरह यहाँ पर दीक्षा की महत्ता का उल्लेख हुआ है। जब तक अपने हृदय में भगवान् को वहन करने वाले उपयुक्त व्यक्ति द्वारा मनुष्य दीक्षित नहीं होता तब तक उसे अपने हृदय के भीतर भगवान् को वहन करने की शक्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

अच्युतांशम् शब्द का प्रयोग इसलिए किया गया है क्योंकि भगवान् षडैश्वर्यपूर्ण—धन, बल, यश, ज्ञान, सौन्दर्य तथा त्याग से पूर्ण हैं, वे कभी भी अपने निजी ऐश्वर्यों से विलग नहीं होते। ब्रह्म-संहिता (५.३९) में ठीक ही कहा गया है—रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्—भगवान् अपने सारे अंशों—यथा राम, नृसिंह, वराह आदि के सहित सदैव स्थित होते हैं। इसीलिए यहाँ पर अच्युतम् शब्द का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। इससे सूचित होता है कि भगवान् सदैव अपने अंशों तथा ऐश्वर्यों के साथ उपस्थित रहते हैं। तब योगीजन जिस रूप में उनका कृत्रिम ढंग से चिन्तन करते हैं उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती। ध्यानावस्थित-तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः (भागवत १२.१३.१)। योगीजन अपने मन के भीतर परम पुरुष का ध्यान करते हैं। किन्तु भक्त के लिए भगवान् उपस्थित रहते हैं—उनकी उपस्थिति को प्रामाणिक गुरु द्वारा दीक्षा के माध्यम से जागृत किये जाने की ही आवश्यकता पड़ती है। भगवान् को देवकी के गर्भ के भीतर रहने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि देवकी के हृदय

में उनकी उपस्थिति ही उनको धारण करने के लिए पर्याप्त थी। यहाँ पर यह सोचने के लिए मना किया गया है कि वसुदेव द्वारा देवकी के गर्भ से कृष्ण उत्पन्न किये गये और वे उन्हें अपने गर्भ में धारण किये रहीं।

जब वसुदेव भगवान् को अपने हृदय में धारण किये हुए थे तो वे उस चमकते सूर्य जैसे लग रहे थे जिसकी चमचमाती किरणें सामान्य व्यक्ति के लिए सदा असह्य तथा झुलसाने वाली होती हैं। वसुदेव के शुद्ध हृदय में भगवान् का जो रूप स्थित था वह कृष्ण के आदि रूप से भिन्न नहीं है। कृष्ण के रूप का कहीं भी और विशेष रूप से हृदय में प्राकट्य धाम कहलाता है। धाम न केवल कृष्ण के रूप का अपितु उनके नाम, रूप, गुण तथा परिकर का भी द्योतक है। सब कुछ एकसाथ प्रकट होता है।

इस तरह अपनी पूर्ण शक्तियों समेत भगवान् का नित्य रूप वसुदेव के मन से देवकी के मन में उसी तरह स्थानान्तरित किया गया जिस तरह डूबते सूर्य की किरणें पूर्व में उदय होने वाले चन्द्रमा में स्थानान्तरित हो जाती हैं।

भगवान् कृष्ण वसुदेव के शरीर से देवकी के शरीर में प्रविष्ट हुए। वे सामान्य जीव की परिस्थितियों से परे थे। कृष्ण कहीं भी रहें वे नारायण जैसे अपने अंशों तथा भगवान् नृसिंह, वराह जैसे अवतारों के साथ रहते हैं। इस तरह वे जगत की सामान्य परिस्थितियों से परे होते हैं। इस तरह देवकी अद्वितीय एवं सृष्टि के कारणस्वरूप भगवान् का धाम बन गई। किन्तु कंस के घर में होने से वे दबी हुई अग्नि या अप्रयुक्त विद्या की तरह दिख रही थीं। जब आग को किसी पात्र की दीवारों से ढक दिया जाता है या किसी लोटे में रख दिया जाता है, तो अग्नि की प्रकाशमान किरणें नहीं दिखतीं। इसी तरह जिस ज्ञान से जनता को लाभ नहीं पहुँचता वह श्लाघनीय नहीं। चूँकि देवकी को कंस के बन्दीगृह की चहारदीवारियों के भीतर रखा गया था अतएव उनके उस दिव्य सौन्दर्य को कोई नहीं देख सकता था, जो उनमें भगवान् को धारण करने से उत्पन्न था।

इस श्लोक की टीका करते हुए श्री वीरराघव आचार्य लिखते हैं—*वसुदेवदेवकी-जठरयोर्हृदयोर्भगवतः सम्बन्धः।* वसुदेव के हृदय से देवकी के गर्भ में भगवान् का प्रवेश दो हृदयों का मिलन था।

सा देवकी सर्वजगन्निवास-
 निवासभूता नितरां न रेजे ।
 भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा
 सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सा देवकी—वह देवकी देवी; सर्व-जगत्-निवास—सारे ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले भगवान् का (मत्स्थानि सर्वभूतानि);
 निवास-भूता—देवकी की कुक्षि अब निवास बनी हुई है; नितराम्—विस्तार से; न—नहीं; रेजे—प्रकाशमान हो उठा; भोजेन्द्र-
 गेहे—कंस के घर की चहारदीवारी के भीतर; अग्नि-शिखा इव—आग की लपटों के समान; रुद्धा—ढकी हुई; सरस्वती—
 विद्या; ज्ञान-खले—ज्ञान-खल नामक व्यक्ति में, ऐसे व्यक्ति में जो ज्ञान होने पर भी उसको वितरित नहीं करता; यथा—जिस
 तरह; सती—होकर भी।

तब देवकी ने समस्त कारणों के कारण, समग्र ब्रह्माण्ड के आधार भगवान् को अपने भीतर
 रखा किन्तु कंस के घर के भीतर बन्दी होने से वे किसी पात्र की दीवालों से ढकी हुई अग्नि की
 लपटों की तरह या उस व्यक्ति की तरह थीं जो अपने ज्ञान को जनसमुदाय के लाभ हेतु वितरित
 नहीं करता।

तात्पर्य : इस श्लोक में ज्ञान-खल शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान तो वितरण के लिए होता है।
 यद्यपि पहले से ही पर्याप्त ज्ञान है किन्तु जब भी विज्ञानियों या दार्शनिकों को कोई नया ज्ञान सूझता है,
 तो वे उसे विश्वभर में वितरित कर देना चाहते हैं अन्यथा वह ज्ञान क्रमशः सूख जाता है और उससे
 कोई भी व्यक्ति लाभ नहीं उठा पाता। भारत के पास भगवद्गीता का ज्ञान है किन्तु दुर्भाग्यवश किसी न
 किसी कारणवश इस दिव्य भगवद्ज्ञान का विश्वभर में वितरण नहीं हो पाया यद्यपि यह सारे मानव
 समाज के निमित्त है। इसीलिए कृष्ण स्वयं श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने सारे
 भारतीयों को आदेश दिया कि वे भगवद्गीता के ज्ञान का सारे विश्व में वितरण करने का भार अपने
 हाथ में लें।

यारे देख, तारे कह 'कृष्ण'-उपदेश।

आमार आज्ञाय गुरु हजा तार एइ देश ॥

“ भगवद्गीता तथा श्रीमद्भागवत में दिये गये भगवान् श्रीकृष्ण के आदेशों का पालन करने के
 लिए हर एक को उपदेश दो। इस तरह आध्यात्मिक गुरु बनकर इस देश के हर व्यक्ति को मुक्त करने
 का प्रयास करो।” (चैतन्यचरितामृत मध्य ७.१२८) यद्यपि भारत के पास भगवद्गीता का दिव्य ज्ञान है
 किन्तु भारतीयों ने इसे वितरित करने का अपना कर्तव्य नहीं निभाया। इसीलिए अब इस ज्ञान को

यथारूप में बिना किसी विकार के वितरित करने के लिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन की स्थापना की गई है। यद्यपि इससे पूर्व भी *भगवद्गीता* के ज्ञान का वितरण करने के प्रयास हुए हैं किन्तु इन प्रयासों में विकृति तथा संसारी ज्ञान से समझौता किया जाता रहा है। लेकिन अब कृष्णभावनामृत आन्दोलन *भगवद्गीता* यथारूप का वितरण कर रहा है और लोग इस ज्ञान का लाभ उठाकर कृष्णभावनामृत की ओर जग रहे हैं और कृष्ण के भक्त बन रहे हैं। इस तरह ज्ञान के समुचित वितरण के शुभारम्भ से न केवल सारा विश्व लाभान्वित होगा अपितु मानव समाज में भारत की कीर्ति बढ़ेगी। कंस ने कृष्णभावनामृत को अपने घर के भीतर (*भोजेन्द्रगृहे*) बन्दी बनाने का प्रयास किया जिसका परिणाम यह हुआ कि वह अपने सारे ऐश्वर्य समेत नष्ट हो गया। इसी तरह दुराग्रही भारतीय नेताओं द्वारा *भगवद्गीता* के असली ज्ञान का गला घोंटा जा रहा था और परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति तथा भगवद्ज्ञान नष्ट हो रहा था। किन्तु अब कृष्णभावनामृत के प्रसार के साथ ही *भगवद्गीता* का सही उपयोग होने लगा है।

तां वीक्ष्य कंसः प्रभयाजितान्तरां
विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ।
आहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां
ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥

शब्दार्थ

ताम्—उस देवकी को; वीक्ष्य—देखकर; कंसः—उसके भाई कंस ने; प्रभया—उसके सौन्दर्य और प्रभाव के बढ़ने से; अजित-अन्तराम्—अजित या भगवान् विष्णु को अपने भीतर रखने के कारण; विरोचयन्तीम्—प्रकाशित करती हुई; भवनम्—घर के समूचे वातावरण को; शुचि-स्मिताम्—हँसती हुई तथा तेजस्वी; आह—अपने आप कहा; एषः—यह (परम पुरुष); मे—मेरा; प्राण-हरः—मेरी जान लेनेवाले; हरिः—भगवान् विष्णु ने; गुहाम्—देवकी के गर्भ में; ध्रुवम्—निश्चित रूप से; श्रितः—शरण ली है; यत्—क्योंकि; न—नहीं थी; पुरा—पहले; इयम्—देवकी; ईदृशी—इस तरह।

गर्भ में भगवान् के होने से देवकी जिस स्थान में बन्दी थीं वहाँ के सारे वातावरण को वे आलोकित करने लगीं। उसे प्रसन्न, शुद्ध तथा हँसमुख देखकर कंस ने सोचा, “इसके भीतर स्थित भगवान् विष्णु अब मेरा वध करेंगे। इसके पूर्व देवकी कभी भी इतनी तेजवान तथा प्रसन्न नहीं दिखी।”

तात्पर्य : भगवान् ने *भगवद्गीता* (४.७) में कहा है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

“हे भरतवंशी! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म की प्रधानता हो जाती है तब तब मैं अवतार लेता हूँ!” इस युग में सम्प्रति मानव कर्तव्यों के पालन में असाधारण गलतियाँ हो रही हैं। मानवजीवन ईश-साक्षात्कार के निमित्त है किन्तु दुर्भाग्यवश भौतिकतावादी सभ्यता शरीर की इन्द्रियों पर जोर देती है शरीर के भीतर की प्राणशक्ति को समझने पर नहीं। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है (*देहिनोऽस्मिन् यथा देहे*), शरीर के भीतर शरीर का स्वामी, प्राणशक्ति है, जो अधिक महत्त्वपूर्ण है। किन्तु मानव समाज इतना पतित हो चुका है कि शरीर के भीतर की प्राणशक्ति को न समझकर मनुष्य बाहरी वस्तुओं में व्यस्त रहता है। मानव कर्तव्यों में यह एक त्रुटि है। इसीलिए कृष्ण ने कृष्णभावनामृत आन्दोलन के गर्भ में जन्म या शरण ले रखी है। इसलिए कंस जैसे लोग अत्यन्त भयभीत हैं और इस आन्दोलन को विशेष रूप से पश्चिमी देशों में रोकने में लगे हुए हैं। एक राजनीतिज्ञ ने तो यहाँ तक कहा है कि कृष्णभावनामृत आन्दोलन महामारी की तरह फैल रहा है और यदि इसे तुरन्त नहीं रोका गया तो यह दस वर्षों में सरकारी शक्ति को हथिया सकता है। निस्सन्देह कृष्णभावनामृत आन्दोलन में ऐसी शक्ति है। जैसाकि अधिकृत लोगों ने कहा है (*चैतन्यचरितामृत, आदि १७.२२*) -*कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार*—इस युग में कृष्ण हरे कृष्ण महामंत्र में प्रकट हुए हैं। कृष्णभावनामृत आन्दोलन जंगल की आग की तरह सारे विश्व में फैल रहा है और इसी तरह फैलता रहेगा। कंस जैसे व्यक्ति इस आन्दोलन की प्रगति से तथा तरुण पीढ़ी द्वारा इसकी स्वीकृति से भयभीत हैं। किन्तु जिस तरह कृष्ण को कंस नहीं मार पाया उसी तरह यह आन्दोलन कंस सरीखे व्यक्तियों के रोके नहीं रुकेगा। यह आन्दोलन अधिकाधिक बढ़ता रहेगा, यदि इस आन्दोलन के नेता विधि-विधानों का पालन करते हुए और हरे कृष्ण महामंत्र का नियमित कीर्तन करते हुए कृष्णभावनाभावित बने रहें।

किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे

यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ।

स्त्रियाः स्वसुर्गुमत्या वधोऽयं

यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

किम्—क्या; अद्य—अब तुरन्त; तस्मिन्—इस स्थिति में; करणीयम्—करने योग्य; आशु—बिना बिलम्ब किये; मे—मेरा कर्तव्य; यत्—क्योंकि; अर्थ-तन्त्रः—भगवान्, जो साधुओं की रक्षा करने तथा असाधुओं का वध करने के लिए कृतसंकल्प हैं; न—नहीं; विहन्ति—त्यागते हैं; विक्रमम्—अपने पराक्रम को; स्त्रियाः—स्त्री का; स्वसुः—बहन का; गुरु-मत्याः—विशेषरूप से जब वह गर्भवती है; वधः अयम्—वध; यशः—यश; श्रियम्—ऐश्वर्य; हन्ति—नष्ट हो जाएगा; अनुकालम्—हमेशा के लिए; आयुः—तथा उम्र।

कंस ने सोचा: अब मुझे क्या करना चाहिए? अपना लक्ष्य जानने वाले भगवान् (परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्) अपना पराक्रम त्यागने वाले नहीं हैं। देवकी स्त्री है, वह मेरी बहन है और गर्भवती भी है। यदि मैं उसे मार डालूँ तो मेरे यश, ऐश्वर्य तथा आयु निश्चित रूप से नष्ट हो जाएँगे।

तात्पर्य : वैदिक नियमों के अनुसार किसी स्त्री, ब्राह्मण, वृद्ध, शिशु तथा गाय का कभी भी वध नहीं किया जाना चाहिए। ऐसा लगता है कि भगवान् का परम शत्रु होते हुए भी कंस वैदिक संस्कृति से अवगत था और इस तथ्य के प्रति जागरूक था कि आत्मा एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करता है और मनुष्य इस जीवन के कर्मों के अनुसार अगले जीवन में कष्ट भोगता है। इसलिए वह देवकी का वध करने से डर रहा था क्योंकि वह स्त्री थी, फिर उसकी बहन थी और तिस पर वह गर्भवती थी। क्षत्रिय वीरतापूर्ण कार्य करके विख्यात होता है। किन्तु ऐसी स्त्री को मारने में कौन सी बहादुरी होगी जो उसकी शरण में थी? इसलिए वह देवकी का वध करने का जघन्य कार्य नहीं करना चाहता था। कंस का शत्रु तो देवकी के गर्भ के भीतर था किन्तु शत्रु का ऐसी अज्ञान की स्थिति में वध करना बहादुरी नहीं होगी। क्षत्रिय नियमों के अनुसार शत्रु से आमने-सामने तथा उचित हथियारों के साथ युद्ध करना चाहिए। और यदि शत्रु मारा जाता है, तो जीतने वाला विख्यात बनता है। कंस ने इन बातों पर बड़े विवेक से तर्क-वितर्क किया और यह पूरी तरह जानते हुए भी कि देवकी के गर्भ में उसका शत्रु प्रकट हो चुका है, वह उसका वध करने से अपने को रोकता रहा।

स एष जीवन्खलु सम्प्रेतो
वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन ।
देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति
गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

सः—वह; एषः—वह ईर्ष्यालु व्यक्ति; जीवन्—जीवित रहते हुए; खलु—भी; सम्प्रेतः—मृत है; वर्तेत—जीवित रह रहा है; यः—जो; अत्यन्त—अत्यधिक; नृशंसितेन—क्रूर कर्मों द्वारा; देहे—शरीर होने पर; मृते—समाप्त हो जाता है; तम्—उसको;

मनुजाः—सारे मनुष्य; शपन्ति—निन्दा करते हैं; गन्ता—जाएगा; तमः अन्धम्—नारकीय जीवन को; तनु-मानिनः—देहात्मबोध वाले व्यक्ति के; ध्रुवम्—कोई सन्देह नहीं।

अत्यधिक क्रूर व्यक्ति को जीवित रहते हुए भी मृत माना जाता है क्योंकि उसके जीवित रहते हुए या उसकी मृत्यु के बाद भी हर कोई उसकी निन्दा करता है। देहात्मबुद्धिवाला व्यक्ति मृत्यु के बाद भी अन्धतम नरक को भेजा जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

तात्पर्य : कंस ने विचार किया कि यदि वह अपनी बहन को मारता है, तो जब तक वह जीवित रहेगा तब तक लोग उसकी निन्दा करेंगे और मृत्यु के बाद उसे अपनी इस क्रूरता के लिए अन्धतम नरक में जाना पड़ेगा। कहा गया है कि कसाई जैसे क्रूर व्यक्ति को सलाह दी जाती है कि वह न तो जिये और न ही मरे। जीवित अवस्था में ऐसा क्रूर व्यक्ति अपने अगले जीवन के लिए नारकीय स्थिति उत्पन्न करता है अतएव उसे जीवित नहीं रहना चाहिए। किन्तु उसे मरने की भी सलाह नहीं दी जाती क्योंकि मृत्यु के बाद उसे अन्धतम नरक में जाना पड़ेगा। इस तरह वह दोनों तरह से निन्दनीय है। इसीलिए आत्मा के देहान्तरण का ज्ञान होने के कारण कंस ने जानबूझ कर देवकी का वध करने से अपने को रोका।

इस श्लोक में *गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम्* शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं और उनकी विस्तृत जानकारी आवश्यक है। श्रील जीव गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी टीका* में कहा है—*तत्र तनुमानिनः पापिन इति देहात्माबुद्ध्यैव पापाभिनवेशो भवति।* जो व्यक्ति यह सोचते हुए कि “मैं यह शरीर हूँ” देहात्मबोध में जीता है, वह अपने को इस विचार मात्र के आधार पर पापमय कृत्यों में डालता है। इस विचार के अन्तर्गत जीने वाला कोई भी व्यक्ति नरक का भागी समझा जाना चाहिये।

अदान्तगोभिर्विशतां तमिस्रं

पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्

(भागवत ७.५.३०)

देहात्मबुद्धि वाला व्यक्ति अपनी इन्द्रियतृप्ति पर अंकुश नहीं लगा पाता। ऐसा व्यक्ति खाने, पीने, आनन्द मनाने तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए कुछ भी कर सकता है। उसे इसका ज्ञान नहीं रहता कि आत्मा का देहान्तरण एक शरीर से दूसरे में होता है। ऐसा व्यक्ति जो चाहता है, जो सोचता है, वही करता है, जिसके कारण प्रकृति के नियमों के अनुसार वह विभिन्न भौतिक शरीरों में घोर कष्ट भोगता है।

यावत् क्रियास्तावदिदं मनो वै
कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ।

(भागवत ५.५.५)

देहात्मबुद्धि के कारण मनुष्य कर्मानुबन्ध अर्थात् कर्म द्वारा बद्ध रहता है और जब तक उसका मन कर्म में लीन रहता है तब तक उसे शरीर ग्रहण करना पड़ता है। यह शरीरबन्ध कष्ट का कारण (क्लेश-द) है।

न साधु मन्ये यत आत्मनोऽयम्
असन्नपि क्लेशद आस देहः ।

यद्यति शरीर क्षणभंगुर है यह अनेक प्रकार से कष्ट दिया करता है किन्तु दुर्भाग्यवश मानव सभ्यता तनुमानी अर्थात् देहात्मबुद्धि पर आश्रित है, जिसमें मनुष्य सोचता है, “मैं अमुक राष्ट्र से सम्बद्ध हूँ, मैं इस समुदाय का हूँ, उस समुदाय का हूँ” इत्यादि इत्यादि। हममें से हर एक के अपने अपने विचार हैं और हम व्यक्तिगत, सामाजिक, जातिगत तथा राष्ट्रगत रूप से कर्मानुबन्ध की पापमयी जटिलताओं में बँधते जा रहे हैं। शरीर के निर्वाह हेतु लोग अन्य शरीरों का वध करते हैं और कर्मानुबन्ध में फँसते जाते हैं। इसीलिए श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं कि तनुमानी पापी होते हैं। ऐसे पापियों का अन्तिम गन्तव्य अन्धतम नरक होता है (गन्ता तमोऽन्धम्)। विशेषतया, जो व्यक्ति पशुओं को मार कर अपना शरीर पालना चाहता है, वह सबसे बड़ा पापी है और वह आध्यात्मिक जीवन के महत्त्व को नहीं समझ सकता। भगवद्गीता (१६.१९-२०) में भगवान् कहते हैं—

तान् अहं द्विषतः क्रूरान् संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान् आसुरीष्वेव योनिषु ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि ।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥

“जो लोग ईर्षालु तथा ऊत्पाती हैं, जो पुरुषों में अधम हैं उन्हें मैं इस भवसागर में विभिन्न आसुरी योनियों में डाल देता हूँ। ऐसे व्यक्ति आसुरी जीवन की योनियों में बारम्बार जन्म ग्रहण करते हुए मेरे पास कभी नहीं पहुँच पाते। ऐसे लोग क्रमशः अत्यन्त निन्दनीय स्थिति में नीचे चले जाते हैं।” यह

मानव जीवन एक वरदान है, जो अनेकानेक जन्मों के बाद मिला है, जिसके मूल्य को मनुष्य को समझना चाहिए। अतः मनुष्य को *तनुमानी* अर्थात् देहात्मबुद्धि से मुक्त होकर भगवान् का साक्षात्कार करना चाहिए।

इति घोरतमाद्भावात्सन्नित्तः स्वयं प्रभुः ।

आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

इति—इस तरह उपर्युक्त विधि से सोचते हुए; घोर-तमात् भावात्—अपनी बहन को किस तरह मारे इस अत्यन्त जघन्य विचार से; सन्नित्तः—विलग रहकर; स्वयम्—स्वयं विचार करके; प्रभुः—पूर्णज्ञान में (कंस); आस्ते—रहता रहा; प्रतीक्षन्—उस क्षण की प्रतीक्षा करते हुए; तत्-जन्म—उसका जन्म होने तक; हरेः—भगवान् हरि के; वैर-अनुबन्ध-कृत्—ऐसा वैर चलाते रहने के लिए दृढ़।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह तर्क-वितर्क करते हुए कंस यद्यपि भगवान् के प्रति शत्रुता बनाये रखने के लिए दृढ़ था किन्तु अपनी बहन का जघन्य वध करने से कतराता रहा। उसने भगवान् के जन्म लेने तक प्रतीक्षा करने और तब जो आवश्यक हो, करने का निश्चय किया।

आसीनः संविशंस्तिष्ठन्भुञ्जानः पर्यटन्महीम् ।

चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

आसीनः—कमरे या सिंहासन पर आराम से बैठे हुए; संविशन्—अथवा अपने बिस्तर पर लेटे हुए; तिष्ठन्—या अन्यत्र ठहरे हुए; भुञ्जानः—खाते; पर्यटन्—घूमते; महीम्—पृथ्वी पर, इधर-उधर जाते हुए; चिन्तयानः—सदैव शत्रु-भाव से चिन्तन करते; हृषीकेशम्—सबों के नियन्ता भगवान् को; अपश्यत्—देखा; तत्-मयम्—उससे (कृष्ण से) ही युक्त; जगत्—सारा संसार।

सिंहासन पर अथवा अपने कमरे में बैठे, बिस्तर पर लेटे या कहीं भी रहते हुए, खाते, सोते या घूमते हुए कंस केवल अपने शत्रु भगवान् हृषीकेश को ही देखता था। दूसरे शब्दों में, अपने सर्वव्यापक शत्रु का चिन्तन करते करते कंस प्रतिकूल भाव से कृष्णभावनाभावित हो गया था।

तात्पर्य : श्रील रूप गोस्वामी ने भक्ति के सर्वोत्तम प्रकार को *आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनम्* कहा है। निस्सन्देह कंस भी कृष्णभावनाभावित था किन्तु वह कृष्ण को शत्रु मानता था। अतः कृष्णभावनामृत में निमग्न रहते हुए भी उसका कृष्णभावनामृत उसके जीवन के अनुकूल न था। यदि कृष्णभावनामृत का अनुकूल अनुशीलन किया जाय तो मनुष्य इतना सुखी हो सकता है कि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति को *कैवल्यसुखं* अर्थात् कृष्ण में तादात्म्य भी कोई बहुत बड़ा लाभ नहीं लगता। *कैवल्यमं नरकायते।*

कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए निर्विशेषवादियों द्वारा अभीष्ट, कृष्ण अथवा ब्रह्म में तादात्म्य असुविधाजनक लगता है। *कैवल्यं नरकायते त्रिदशपूराकाशपुष्पायते।* कर्मीजन स्वर्ग जाने की लालसा करते हैं किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति इसे व्यर्थ का मायाजाल ही मानते हैं। *दुर्दान्तेन्द्रिय कालसर्पपटली प्रोत्खातदंष्ट्रायते।* योगी इन्द्रियों को वश में करने का प्रयास करते हैं और सुखी बनते हैं किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति योग विधि की उपेक्षा करते हैं। वह इन्द्रियरूपी बड़े-बड़े शत्रुओं की परवाह नहीं करता जो सर्पों के समान हैं। किन्तु कृष्णभावनामृत का अनुकूल भाव से अनुशीलन करने वाले व्यक्ति कर्मियों, ज्ञानियों तथा योगियों द्वारा अनुभव किये जानेवाले सुख की लेशमात्र भी परवाह नहीं करते। पर कंस भिन्न प्रकार से—शत्रुता के भाव से—कृष्णभावनामृत का अनुशीलन कर रहा था, अतः अपने जीवन के सारे कार्यकलापों में—बैठते, सोते, घूमते, अथवा खाते बेचैनी का अनुभव करता था और अपने आपको सदा संकट में पाता था। भक्त तथा अभक्त का यही अन्तर है। अभक्त या नास्तिक भी ईशचेतना का अनुशीलन करता है—किन्तु हर वस्तु में ईश्वर को नकारते हुए। उदाहरणार्थ तथाकथित विज्ञानी जो रसायनों के संयोग से जीवन का सृजन करना चाहते हैं, वे बाह्य भौतिक तत्त्वों को सर्वोपरि मानते हैं। ऐसे विज्ञानियों को यह विचार रास नहीं आता कि जीव भगवान् का अंश है। जैसाकि *भगवद्गीता* में स्पष्ट कहा गया है (*ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः*) जीव—पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि जैसे भौतिक तत्त्वों के संयोग से नहीं बनते अपितु भगवान् के भिन्नांशों से बने होते हैं। भगवान् के भिन्नांश रूप में जीवों की स्थिति समझ लेने पर, जीव की प्रकृति के अध्ययन द्वारा भगवान् की प्रकृति को समझा जा सकता है क्योंकि जीव भगवान् का अंश-रूप है। किन्तु नास्तिकों की रुचि ईशभावनामृत में नहीं होती, अतः वे प्रतिकूल ढंगों से कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करके सुखी बनना चाहते हैं।

यद्यपि कंस हरि के विचारों में सदैव डूबा रहता था किन्तु वह सुखी नहीं था। पर भक्त चाहे सिंहासनारूढ़ हो या वृक्ष के नीचे बैठा हो, सदैव सुखी रहता है। श्रील रूप गोस्वामी ने वृक्ष के नीचे बैठने के लिए सरकार के मंत्रीपद से त्यागपत्र दे दिया था; फिर भी वे सुखी थे। *त्यक्त्वा तूर्णमशेषमण्डलपतिश्रेणीं सदा तुच्छवत्* (*षड्गोस्वाम्यष्टक ४*)। उन्होंने मंत्री के सुखदायक पद की परवाह नहीं की। वे वृन्दावन में एक वृक्ष के नीचे ही भगवान् की अनुकूल सेवा करते हुए सुखी थे।

एक भक्त तथा अभक्त में यही अन्तर है। अभक्त के लिए संसार समस्याओं से पूर्ण है जब कि भक्त के लिए सारा जगत सुखमय है।

विश्वं पूर्णसुखायते विधिमहेन्द्रादिश्च कीटायते।

यत्कारुण्यकटाक्षवैभववतां तं गौरमेव स्तुमः ॥

(चैतन्यचन्द्रामृत ९५)

भक्त की यह सुखमय स्थिति भगवान् चैतन्य महाप्रभु की कृपा से स्थापित हो सकती है। *यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।* (भगवद्गीता ६.२२) भक्त ऊपरी तौर पर महान् संकट में पड़ कर भी कभी उद्विग्न नहीं होता।

ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः ।

देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

ब्रह्मा—चतुर्मुख सर्वोच्च देवता; भवः च—तथा शिवजी; तत्र—वहाँ; एत्य—आकर; मुनिभिः—मुनियों; नारद-आदिभिः—नारद इत्यादि के साथ; देवैः—तथा इन्द्र, चन्द्र, वरुण इत्यादि देवताओं के साथ; स-अनुचरैः—अपने अपने अनुयायियों के साथ; साकम्—साथ; गीर्भिः—अपनी स्तुतियों से; वृषणम्—किसी को भी वर देने वाले भगवान्; ऐडयन्—प्रसन्न किया।

ब्रह्माजी तथा शिवजी, नारद, देवल तथा व्यास जैसे महामुनियों एवं इन्द्र, चन्द्र तथा वरुण जैसे देवताओं के साथ अदृश्य रूप में देवकी के कक्ष में पहुँचे जहाँ सबों ने मिलकर वरदायक भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सादर स्तुतियाँ कीं।

तात्पर्य : द्वौ भूत-सर्गो लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च (पद्मपुराण)। मनुष्य दो प्रकार के होते हैं—दैव तथा असुर—और इन दोनों में बड़ा भारी अन्तर है। असुर होने के कारण कंस लगातार भगवान् या उनकी माता देवकी को मार डालने के लिए तरह तरह की योजनाएँ बनाता रहता था। इस तरह वह भी कृष्णभावनाभावित था। किन्तु भक्तगण अनुकूल रूप से कृष्णभावनाभावित होते हैं (विष्णु भक्तः स्मृतो दैवः)। ब्रह्माजी इतने शक्तिशाली हैं कि उन्हें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सृजन का कार्य दिया गया है फिर भी वे भगवान् का स्वागत करने स्वयं आये। भव अर्थात् शिवजी भगवान् के नाम का कीर्तन करके सदा हर्षित होते हैं। और नारद का तो कहना ही क्या? नारदमुनि, बाजाय वीणा, राधिका-रमण-नामे। नारदमुनि सदैव भगवान् का गुणगान करते रहते हैं और उनका कार्य है पूरे विश्व का भ्रमण करके भक्त की खोज करना या किसी को भक्त बनाना। नारद की कृपा से शिकारी भी भक्त बन गया। श्रील

सनातन गोस्वामी ने *तोषणी टीका* में लिखा है कि *नारद-आदिभिः* शब्द का अर्थ है कि नारद तथा देवताओं के साथ सनक तथा सनातन मुनि भी थे और वे सभी अपनी बधाई देने तथा भगवान् का स्वागत करने आये थे। यद्यपि कंस देवकी को मारने की योजना बना रहा था किन्तु वह भी भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था (प्रतीक्षंस्तज्जन्म)।

सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

सत्य-व्रतम्—भगवान् जो अपने व्रत से कभी विचलित नहीं होते; * सत्य-परम्—परम सत्य (जैसाकि श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में कहा गया है, सत्यं परं धीमहि); त्रि-सत्यम्—वे इस जगत की सृष्टि, पालन तथा इसके संहार के बाद भी परम सत्य के रूप में विद्यमान रहते हैं; सत्यस्य—परम सत्य कृष्ण से उद्भूत सारे सत्यों के; योनिम्—कारण; निहितम्—प्रविष्ट; **च—तथा; सत्ये—इस जगत को उत्पन्न करने वाले कारणों (पंचतत्वों-क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर); सत्यस्य—सत्य माने जाने वाले का; सत्यम्—भगवान् जो आदि सत्य हैं; ऋत-सत्य-नेत्रम्—अच्छे लगने वाले सत्य के उद्गम (सुनेत्रम्); सत्य-आत्मकम्—भगवान् से सम्बद्ध हर वस्तु सत्य है (सच्चिदानन्द) (उनका शरीर सत्य है, उनका ज्ञान सत्य है और उनका आनन्द सत्य है); त्वाम्—तुम्हारी, हे भगवान्; शरणम्—शरण में; प्रपन्नाः—आपके संरक्षण में हम सभी।

footnote starts here

* भगवान् का व्रत है—यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् (भगवद्गीता ४.७)। इसी व्रत को निभाने के लिए भगवान् प्रकट हुए।

** भगवान् सारी वस्तुओं में यहाँ तक कि परमाणु के भीतर भी हैं—*अण्डान्तरस्थ परमाणुचयान्तरस्थम्* (ब्रह्म-संहिता ५.४४)। इसीलिए वे अन्तर्यामी कहलाते हैं।

footnote ends here

देवताओं ने प्रार्थना की; हे प्रभो, आप अपने व्रत से कभी भी विचलित नहीं होते जो सदा ही पूर्ण रहता है क्योंकि आप जो भी निर्णय लेते हैं वह पूरी तरह सही होता है और किसी के द्वारा रोका नहीं जा सकता। सृष्टि, पालन तथा संहार—जगत की इन तीन अवस्थाओं में वर्तमान रहने से आप परम सत्य हैं। कोई तब तक आपकी कृपा का भाजन नहीं बन सकता जब तक वह पूरी तरह आज्ञाकारी न हो अतः इसे दिखावटी लोग प्राप्त नहीं कर सकते। आप सृष्टि के सारे अवयवों में असली सत्य हैं इसीलिए आप अन्तर्यामी कहलाते हैं। आप सबों पर समभाव रखते हैं

और आपके आदेश प्रत्येक काल में हर एक पर लागू होते हैं। आप आदि सत्य हैं अतः हम नमस्कार करते हैं और आपकी शरण में आए हैं। आप हमारी रक्षा करें।

तात्पर्य : देवता या भक्तगण भलीभाँति जानते हैं कि चाहे यह भौतिक जगत हो या वैकुण्ठलोक, असली वस्तु तो भगवान् ही हैं। इसीलिए श्रीमद्भागवत का आरम्भ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ... सत्यं परं धीमहि से होता है। वासुदेव, कृष्ण ही परं सत्य हैं। परम सत्य तक परम विधि द्वारा ही पहुँचा जा सकता है जैसा कि परम सत्य ने घोषित किया है—भक्त्यामामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः (भगवद्गीता १८.५५)। परम सत्य को समझने का एकमात्र ढंग है भक्ति। इसीलिए देवतागण अपनी रक्षा के लिए परम सत्य की ही शरण में आते हैं सापेक्ष सत्य की नहीं। ऐसे अनेक लोग हैं, जो देवताओं की पूजा करते हैं किन्तु परम सत्य कृष्ण ने भगवद्गीता (७.२३) में कहा है—अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्—अल्पज्ञ लोग देवताओं की पूजा करते हैं और उनके फल सीमित तथा क्षणिक होते हैं। देवताओं की पूजा सीमित समय के लिए लाभदायक हो सकती है किन्तु परिणाम नाशवान होता है। यह संसार नश्वर है और देवता भी नश्वर हैं। देवताओं से प्राप्त होने वाले वर भी नश्वर होते हैं जब कि जीव शाश्वत है (नित्योनित्यानाम् चेतनश्चेतनानाम्)। इसलिए हर जीव को नश्वर सुख नहीं अपितु शाश्वत सुख की खोज करनी चाहिए। सत्यं परं धीमहि सूचित करता है कि मनुष्य को सत्य की खोज करनी चाहिए सापेक्ष सत्य की नहीं।

भगवान् नृसिंहदेव की प्रार्थना करते हुए प्रह्लाद महाराज ने कहा था—

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह

नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि बच्चे के रक्षक उसके माता-पिता होते हैं किन्तु यह यथार्थ नहीं है। असली रक्षक तो पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं।

तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्

तावद्विभो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ।

(भागवत ७.९.१९)

यदि किसी बालक की उपेक्षा भगवान् द्वारा होती है, वह अपने मातापिता के होते हुए भी कष्ट

भोगता है। इसी तरह रोगी व्यक्ति सारी चिकित्सा होने पर भी मर जाता है। इस भौतिक संसार में, जहाँ जीवन-संघर्ष चल रहा है, लोगों ने रक्षा के अनेक साधन ढूँढ निकाले हैं किन्तु यदि भगवान् इनका तिरस्कार कर देते हैं, तो ये व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिए देवताओं ने जानबूझ कर कहा— *सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः*—हे प्रभु! आप ही असली रक्षा कर सकते हैं अतएव हम आपकी शरण ग्रहण करते हैं।

भगवान् चाहते हैं कि लोग उनकी शरण में आएँ (*सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज*) और वे आगे कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति च याचते।

अभयंसर्वदातस्मैदाम्येतद्ब्रतं मम ॥

“यदि कोई निष्ठापूर्वक यह कहकर मेरी शरण में आता है कि ‘हे प्रभो! आज से मैं आपकी शरण में हूँ’ तो मैं उसे सदैव सुरक्षा प्रदान करता हूँ। यह मेरा व्रत है।” (*रामायण, युद्ध काण्ड १८.३३*)। देवताओं ने भगवान् की स्तुति की क्योंकि कंस तथा उसके सहयोगियों द्वारा सताये गये सारे भक्तों की रक्षा करने के लिए भगवान् अपनी भक्त देवकी के गर्भ में अब प्रकट हो चुके थे। इस तरह भगवान् *सत्यव्रत* की भूमिका अदा करते हैं। भगवान् द्वारा की जाने वाली रक्षा की तुलना देवताओं द्वारा दी जाने वाली रक्षा से नहीं की जा सकती। कहा जाता है कि रावण शिवजी का महान् भक्त था किन्तु जब भगवान् रामचन्द्र जी उसे मारने गये तो शिवजी उसे सुरक्षा प्रदान नहीं कर सके।

ब्रह्माजी तथा शिव, नारद जैसे महान् ऋषियों तथा अनेक अन्य देवताओं के साथ कंस के घर में अदृश्य होकर आये। वे भगवान् की स्तुति ऐसे चुने हुए श्लोकों से करने लगे जो भक्तों को प्रिय हैं और इच्छाओं को पूरा करने वाले होते हैं। प्रारम्भिक शब्दों में उन्होंने कहा है कि भगवान् अपने व्रत के पक्के हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में कहा गया है, कृष्ण पुण्यात्माओं की रक्षा करने तथा अधर्मियों का विनाश करने के लिए ही इस भौतिक संसार में अवतरित होते हैं। यही उनका व्रत है। देवता समझ गये थे कि भगवान् अपने इस व्रत को पूरा करने के लिए ही देवकी के गर्भ में वास कर चुके हैं। वे परम प्रसन्न थे कि भगवान् अपना ध्येय पूरा करने के लिए प्रकट हो रहे हैं और उन्होंने उन्हें *सत्यं परम्* कह कर सम्बोधित किया।

हर व्यक्ति सत्य की खोज में रहता है। यही जीवन की दार्शनिक शैली है। देवता यह जानकारी देते

हैं कि परम सत्य कृष्ण हैं। जो पूर्णतया कृष्णभावनाभावित है, वह परम सत्य को प्राप्त कर सकता है। कृष्ण परम सत्य हैं। सापेक्ष सत्य काल की तीनों अवस्थाओं में सत्य नहीं है। काल को भूत, वर्तमान तथा भविष्य में विभाजित किया जाता है। कृष्ण भूत, वर्तमान तथा भविष्य सबों में सत्य हैं। भौतिक जगत में हर वस्तु का नियंत्रण परम काल द्वारा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के रूप में होता है। सृष्टि के पहले भी कृष्ण विद्यमान थे और सृष्टि की रचना हो जाने पर हर वस्तु कृष्ण पर टिकी है और इस सृष्टि के नष्ट होने पर कृष्ण बने रहेंगे। अतः वे समस्त परिस्थितियों में परम सत्य हैं। यदि इस जगत में कोई सत्य है, तो वह परम सत्य कृष्ण से उद्भूत है। यदि इस जगत में कोई ऐश्वर्य है, तो उस ऐश्वर्य का कारण कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई यश है, तो उसके कारणस्वरूप कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई पराक्रम है, तो उसका कारण कृष्ण हैं। यदि इस जगत में कोई बुद्धि तथा विद्या है, तो उसका कारण कृष्ण हैं। अतः कृष्ण समस्त सापेक्ष सत्यों के उद्गम हैं।

इसीलिए भक्तगण ब्रह्माजी का अनुसरण करते हुए प्रार्थना करते हैं—*गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि*—कि हम आदि पुरुष परम सत्य गोविन्द की पूजा करते हैं। सर्वत्र सारे कार्य *ज्ञान-बल-क्रिया* इन तीन सिद्धान्तों के रूप में सम्पन्न होते हैं। यदि हर क्षेत्र में पूर्ण ज्ञान, पूर्ण बल तथा पूर्ण क्रिया नहीं होती तो कोई प्रयास कभी सफल नहीं होता। अतः यदि कोई व्यक्ति हर काम में सफलता चाहता है उसे इन तीन सिद्धान्तों का आधार मिलना चाहिए। वेदों में (*श्वेताश्वतर उपनिषद् ६.८*) भगवान् सम्बन्धी निम्नलिखित कथन पाया जाता है—

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते

न तत् समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।

परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते

स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥

भगवान् को स्वयं कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि उनके पास ऐसी शक्तियाँ हैं कि वे जो भी करवाना चाहते हैं वह भौतिक प्रकृति के नियंत्रण द्वारा भलीभाँति सम्पन्न हो जाता है (*स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च*)। इसी तरह जो लोग भगवान् की सेवा में लगे हैं वे जीवन-संघर्ष करने के निमित्त नहीं होते। इस समय कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार करने में जो दस हजार से

भी अधिक नर-नारी विश्वभर में लगे हुए हैं उनके पास कोई स्थायी वृत्ति नहीं है फिर भी हम देखते हैं कि वास्तव में उनका पालन अत्यन्त ठाट-बाट से होता है। *भगवद्गीता* (९.२२) में भगवान् कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनः पर्युपासते ।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

“जो लोग भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं और मेरे दिव्य रूप का ध्यान धरते हैं उन्हें मैं वह देता हूँ जो उनके पास नहीं है तथा जो उनके पास है उसकी सुरक्षा करता हूँ।” भक्तों को इसकी चिन्ता नहीं रहती कि आगे क्या होगा, वे कहाँ ठहरेंगे या क्या खायेंगे क्योंकि उनके लिए वे भगवान् हर वस्तु बनाये रखते हैं और पूर्ति करते हैं जिन्होंने वचन दिया है— *कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति—* हे कुन्तीपुत्र! तू निर्भीक होकर घोषित कर दे कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता है। (*भगवद्गीता* ९.३१) इसलिए सभी दृष्टियों से, सभी परिस्थितियों में यदि कोई पूरी तरह भगवान् की शरण में चला जाता है, तो फिर उसके जीवन-संघर्ष करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस सम्बन्ध में श्रीपाद मध्वाचार्य की टीका सार्थक है, जिसमें *तन्त्र भागवत* से उद्धरण दिये गये हैं—

सच्छब्द उत्तमं ब्रूयाद् आनन्दन्तीति वै वदेत् ॥

येतिज्ञानं समुद्दिष्टं पूर्णानन्ददृशिस्ततः ॥

अतृत्वाच्च तदा दानात्

सत्यात्य चोच्यते विभुः ।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर *सत्यस्य योनिम्* शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि कृष्ण *अवतारी* अर्थात् सारे अवतारों के उद्गम हैं। सारे अवतार परम सत्य हैं फिर भी भगवान् कृष्ण ही समस्त अवतारों के उद्गम हैं। *दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य दीपायते* (*ब्रह्म-संहिता* ५.४६)। मान लीजिये कि अनेक दीपक हैं, जो समान शक्तिवाले हैं फिर भी पहला, दूसरा, तीसरा इत्यादि-इत्यादि दीपक होते हैं। इसी तरह अवतार अनेक हैं जिनकी तुलना दीपकों से की जाती है लेकिन पहला दीपक आदि भगवान् कृष्ण है। *गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ।*

देवताओं को पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् की आज्ञा पालन करने के लिए पूजा करनी चाहिए किन्तु यह

तर्क किया जा सकता है कि भगवान् देवकी के गर्भ के भीतर थे अतः वे भी भौतिक देह में प्रकट होने वाले थे। तो फिर उनकी पूजा क्यों की जाए? किसी सामान्य जीव तथा भगवान् में अन्तर क्यों करें? इन प्रश्नों का उत्तर अगले श्लोकों में दिया गया है।

एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूल-

श्चतुरसः पञ्चविधः षडात्मा ।

सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो

दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

एक-अयनः—सामान्यजीव का शरीर भौतिक तत्त्वों पर पूरी तरह आश्रित है; असौ—वह; द्वि-फलः—इस शरीर में हमें सुख तथा दुख मिलते रहते हैं, जो कर्मों से प्रतिफलित होते हैं; त्रि-मूलः—तीन जड़ों वाली प्रकृति के तीन गुण (सतो, रजो तथा तमोगुण) जिनसे शरीर बना है; चतुः-रसः*—चार रस या आस्वाद; पञ्च-विधः—ज्ञान प्राप्त करने की पाँच इन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जीभ तथा स्पर्श) से युक्त; षट्-आत्मा—छः परिस्थितियाँ (शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख, प्यास); सप्त-त्वक्—सात आवरण (त्वचा, रक्त, पेशी, वसा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य) वाला; अष्ट-विटपः—आठ शाखाएँ (पाँच स्थूल तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि एवं अहंकार); नव-अक्षः—नौ दरवाजे; दश-छदी—दस प्रकार की प्राण वायु जो वृक्ष के पत्तों के सदृश है; द्वि-खगः—दो पक्षी (आत्मा तथा परमात्मा); हि—निस्सन्देह; आदि-वृक्षः—यही आदि वृक्ष या शरीर की बनावट है।

शरीर को अलंकारिक रूप में “आदि वृक्ष” कहा जा सकता है। यह वृक्ष भौतिक प्रकृति की भूमि पर आश्रित होता है और उसमें दो प्रकार के—सुख भोग के तथा दुख भोग के—फल लगते हैं। इसकी तीन जड़ें तीन गुणों—सतो, रजो तथा तमो गुणों के साथ इस वृक्ष के कारणस्वरूप हैं। शारीरिक सुख रूपी फलों के स्वाद चार प्रकार के होते हैं—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष जो पाँच ज्ञान इन्द्रियों द्वारा छः प्रकार की परिस्थितियों—शोक, मोह, जरा, मृत्यु, भूख तथा प्यास के माध्यम से अनुभव किये जाते हैं। इस वृक्ष की छाल में सात परतें होती हैं—त्वचा, रक्त, पेशी, वसा, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य। इस वृक्ष की आठ शाखाएँ हैं जिनमें से पाँच स्थूल तत्त्व तथा तीन सूक्ष्मतत्त्व हैं—क्षिति, जल, पावक, समीर, गगन, मन, बुद्धि तथा अहंकार। शरीर रूपी वृक्ष में नौ छिद्र (कोठर) हैं—आँखें, कान, नथुने, मुँह, गुदा तथा जननेन्द्रिय। इसमें दस पत्तियाँ हैं, जो शरीर से निकलने वाली दस वायु हैं। इस शरीररूपी वृक्ष में दो पक्षी हैं—एक आत्मा तथा दूसरा परमात्मा।

तात्पर्य : यह शरीर पाँच प्रधान तत्त्वों—क्षिति, जल, पावक, समीर तथा गगन—से बना है। ये सारे तत्त्व कृष्ण से उद्भूत हैं। यद्यपि भौतिकतावादी विज्ञानी इन पाँच मूल तत्त्वों को भौतिक जगत का

कारण मानते हैं किन्तु ये तत्त्व स्थूल तथा सूक्ष्म अवस्थाओं में कृष्ण द्वारा ही उत्पन्न हैं जिनकी तटस्था शक्ति से भौतिक जगत में जीव भी उत्पन्न होते हैं। *भगवद्गीता* के सप्तम अध्याय में बतलाया गया है कि समग्र विश्व कृष्ण की दो शक्तियों—परा तथा अपरा शक्तियों—का मेल है। सारे जीव परा शक्ति हैं और निर्जीव तत्त्व उनकी अपरा शक्ति हैं। सुषुप्त अवस्था में हर वस्तु कृष्ण पर टिकी रहती है।

footnote starts here

* जिस तरह वृक्ष की जड़ पृथ्वी से जल (रस) खींचती है उसी तरह शरीर धर्म अर्थ, काम तथा मोक्ष का आस्वादन करता है। ये ही चार प्रकार के रस हैं।

footnote ends here

भौतिक विज्ञानी शरीर की भौतिक रचना का ऐसा पूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत नहीं कर पाते। भौतिक विज्ञानी केवल निर्जीव पदार्थ का विश्लेषण करते हैं किन्तु यह अपर्याप्त है क्योंकि जीव भौतिक शारीरिक संरचना से पूर्णतया भिन्न होता है। *भगवद्गीता* (७.५) में भगवान् कहते हैं—

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।

जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥

“इस अपरा प्रकृति के अतिरिक्त हे महाबाहु अर्जुन! मेरी एक परा प्रकृति है, जिसमें भौतिक प्रकृति से संघर्ष करने वाले तथा विश्व को बनाये रखने वाले सारे जीव पाये जाते हैं।” यद्यपि सारे भौतिक तत्त्व पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण से उद्भूत होते हैं किन्तु वे पृथक् हुए तत्त्व हैं और जीवित तत्त्वों द्वारा धारण किये जाते हैं।

द्विखगः शब्द से सूचित होता है कि शरीर के भीतर के जीवित तत्त्व वृक्ष में बैठे दो पक्षियों के समान हैं। *ख* का अर्थ है “आकाश” तथा ‘*ग*’ का अर्थ है, “गमन करने वाले अतः *द्वि-खगः* दो पक्षियों का द्योतक है। इस शरीर रूपी वृक्ष में दो पक्षी अर्थात् दो सजीव तत्त्व हैं और वे दोनों सदैव पृथक्-पृथक् होते हैं। *भगवद्गीता* (१३.३) में भगवान् कहते हैं—*क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत—*हे भारत! तुम यह भी जान लो कि मैं सारे शरीरों का ज्ञाता भी हूँ। *क्षेत्रज्ञ* अर्थात् शरीर का स्वामी भी *खग* अर्थात् जीव कहलाता है। शरीर के भीतर ऐसे दो क्षेत्रज्ञ हैं—आत्मा तथा परमात्मा। आत्मा अपने शरीर का स्वामी है किन्तु परमात्मा सारे जीवों के शरीरों के भीतर उपस्थित रहता है।

शारीरिक संरचना का ऐसा सम्यक विश्लेषण तथा ज्ञान वैदिक साहित्य के अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

जब दो पक्षी किसी वृक्ष में प्रवेश करते हैं, तो मूर्खतावश कोई यह सोच सकता है कि दोनों पक्षी एक हो गये या वृक्ष से तदाकार हो गये किन्तु ऐसा होता नहीं। प्रत्युत हर पक्षी की अपनी व्यष्टि (निजी) पहचान बनी रहती है। इसी तरह आत्मा तथा परमात्मा कभी एक नहीं होते, न ही पदार्थ से उनका तादात्म्य होता है। जीव सदैव पदार्थ के निकट रहता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह उससे एकाकार हो जाता है (*असंगो ह्ययं पुरुषः*) यद्यपि भौतिक विज्ञानी जैव तथा अजैव या जड़ तथा चेतन को गलती से मिलाजुला मानते हैं।

वैदिक ज्ञान को बंदी बनाकर अथवा गुप्त रखा गया है किन्तु हर व्यक्ति को इसे समझने की आवश्यकता है। अज्ञान की आधुनिक सभ्यता केवल शरीर का विश्लेषण करने में व्यस्त है, अतः लोग इस गलत परिणाम को प्राप्त होते हैं कि शरीर के भीतर की जीवनी शक्ति किन्हीं भौतिक अवस्थाओं में उत्पन्न होती है। लोगों को आत्मा विषयक कोई जानकारी नहीं है किन्तु इस श्लोक में पूरी पूरी व्याख्या दी हुई है कि जीवनी शक्तियाँ दो हैं (*द्वि-खग*)—आत्मा तथा परमात्मा। परमात्मा हर शरीर में उपस्थित है (*ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*) जबकि आत्मा केवल अपने ही शरीर में (*देही*) स्थित है और एक शरीर से दूसरे में स्थानान्तरण करता रहता है।

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूति-

स्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ।

त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां

पश्यन्ति नाना न विपश्चितो ये ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम (हे प्रभु); एकः—अकेले, आप ही सर्वस्व हैं; एव—निस्सन्देह; अस्य सतः—इस दृश्य जगत का; प्रसूतिः—मूल स्रोत; त्वम्—आप; सन्निधानम्—सर्वस्व विनष्ट हो जाने पर ऐसी सारी शक्ति का संरक्षण; त्वम्—आप; अनुग्रहः च—तथा पालक; त्वत्-मायया—आपकी माया से; संवृत-चेतसः—उनका, जिनकी बुद्धि ऐसी माया से आवृत है; त्वाम्—आपको; पश्यन्ति—देखते हैं; नाना—अनेक प्रकार; न—नहीं; विपश्चितः—विद्वान या भक्तगण; ये—जो।

हे प्रभु, आप ही कई रूपों में अभिव्यक्त इस भौतिक जगत रूपी मूल वृक्ष के प्रभावशाली कारणस्वरूप हैं। आप ही इस जगत के पालक भी हैं और संहार के बाद आप ही ऐसे हैं जिसमें सारी वस्तुएँ संरक्षण पाती हैं। जो लोग माया से आवृत हैं, वे इस जगत के पीछे आपका दर्शन नहीं कर पाते क्योंकि उनकी दृष्टि विद्वान भक्तों जैसी नहीं होती।

तात्पर्य : अनेक देवता, यथा ब्रह्मा, शिव तथा विष्णु इस भौतिक जगत के स्रष्टा, पालक तथा संहारक माने जाते हैं किन्तु वास्तव में वे हैं नहीं। यथार्थ तो यह है कि भगवान् अपनी विविध शक्तियों के रूप में हर वस्तु में प्रकट हैं। *एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म*—और कोई दूसरा अस्तित्व नहीं है। जो लोग सचमुच *विपश्चित्* अर्थात् विद्वान हैं, वे जीवन की किसी भी अवस्था में भगवान् को समझने तथा देखने में समर्थ होते हैं। *प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति (ब्रह्म-संहिता ५.३८)*। विद्वान भक्त कष्ट को भी भगवान् की उपस्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। जब कोई भक्त कष्ट में होता है, तो वह देखता है कि भगवान् तो भौतिक जगत के कल्मष से उसे छुटकारा दिलाने या शुद्ध करने के लिए कष्ट के रूप में प्रकट हुए हैं। इस जगत में रहते हुए मनुष्य विविध अवस्थाओं में रहता है, अतः भक्त कष्ट की अवस्था को भी भगवान् का दूसरा स्वरूप ही स्वीकार करता है। *तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः (भागवत १०.१४.८)*। अतः भक्त कष्ट को भगवान् का महान् अनुग्रह मानता है क्योंकि वह समझता है कि उसके कल्मष धोये जा रहे हैं। *तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात् (भगवद्गीता १२.७)*। कष्ट का उदय निषेधात्मक विधि है, जिससे भक्त को इस मृत्यु संसार से अथवा भौतिक संसार से अर्थात् जन्म-मृत्यु की निरन्तर पुनरावृत्ति से छुटकारा दिलाया जाता है। शरणागत को पुनः पुनः जन्म-मृत्यु से बचाने के लिए ही भगवान् उसे थोड़ा कष्ट देकर उसके कल्मष को धो देते हैं। अभक्त इसे नहीं समझ सकता किन्तु भक्त *विपश्चित्* अर्थात् विद्वान होने के कारण इसे देख सकता है। इसलिए अभक्त कष्ट में परेशान हो जाता है किन्तु भक्त इस कष्ट को भगवान् का दूसरा रूप जानकर स्वागत करता है। *सर्वं खल्विदं ब्रह्म*। भक्त वास्तव में देख सकता है कि भगवान् के अतिरिक्त अन्य कोई दूसरी सत्ता नहीं है। *एकमेवाद्वितीयम्*। भगवान् केवल एक है, जो अपने को विभिन्न शक्तियों के रूप में प्रस्तुत करता है।

जिन्हें असली ज्ञान नहीं है, वे सोचते हैं कि ब्रह्मा स्रष्टा हैं, विष्णु पालक हैं और शिव संहारकर्ता हैं और विभिन्न देवतागण विविध कार्यों की पूर्ति के निमित्त हैं। इस तरह वे लोग तरह तरह के प्रयोजन निर्मित करते हैं और इन कार्यों की पूर्ति के लिए विविध देवताओं की पूजा करते हैं। *कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः*। किन्तु भक्त जानता है कि विविध देवता भगवान् के ही अंग हैं और इन अंशों के पूजे जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। भगवान् *भगवद्गीता* (९.२३) में कहते

हैं—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

“हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य जो कुछ भी अन्य देवताओं को अर्पित करता है, वह वास्तव में केवल मेरे निमित्त होता है किन्तु इसे बिना सही ज्ञान के अर्पण किया जाता है।” देवताओं के पूजन की आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि यह अविधि है। मात्र कृष्ण के चरणकमलों की शरण ग्रहण करने से मनुष्य के सारे कार्य पूरे हो जाते हैं और विविध अर्चाविग्रहों या देवताओं को पूजने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। केवल मूढ़ इन सब देवताओं को मानते हैं क्योंकि वे भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा मोहित होते हैं। (त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्) ऐसे मूढ़ इतना भी नहीं समझ सकते कि हर वस्तु के असली स्रोत तो भगवान् हैं (मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्)। मनुष्य को चाहिए कि भगवान् के विविध स्वरूपों से विचलित न हो अपितु परमेश्वर में ध्यान एकाग्र करके उन्हीं की पूजा करे (मामेकं शरणं ब्रज)। मनुष्य-जीवन का यही आदर्श सिद्धान्त होना चाहिए।

बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा

क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ।

सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि

सतामभद्राणि मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

बिभर्षि—आप स्वीकार करें; रूपाणि—अनेक रूप यथा मत्स्य, कूर्म, वराह, राम, नृसिंह आदि; अवबोधः आत्मा—विभिन्न अवतारों के बावजूद आप परम ज्ञाता बने रहते हैं; क्षेमाय—हर एक के और विशेषतया भक्तों के लाभ के लिए; लोकस्य—सारे जीवों के; चर-अचरस्य—जड़ तथा चेतन का; सत्त्व-उपपन्नानि—ऐसे सारे अवतार दिव्य होते हैं (शुद्ध सत्त्व); सुख-अवहानि—दिव्य आनन्द से पूरित; सताम्—भक्तों का; अभद्राणि—सारा अशुभ या संहार; मुहुः—पुनः पुनः; खलानाम्—अभक्तों का।

हे ईश्वर, आप सदैव ज्ञान से पूर्ण रहने वाले हैं और सारे जीवों का कल्याण करने के लिए आप विविध रूपों में अवतरित होते हैं, जो भौतिक सृष्टि के परे होते हैं। जब आप इन अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं, तो आप पुण्यात्माओं तथा धार्मिक भक्तों के लिए मोहक लगते हैं किन्तु अभक्तों के लिए आप संहारकर्ता हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में बतलाया गया है कि भगवान् पुनः पुनः क्यों अवतरित होते हैं। भगवान् के

सारे अवतार अलग-अलग कार्य करते हैं किन्तु उनका एक प्रधान कार्य होता है भक्तों की रक्षा और दुष्टों का संहार (*परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्*) । इन दुराग्रहियों का संहार भी उनके लिए अन्ततोगत्वा शुभ ही होता है ।

त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि
समाधिनावेशितचेतसैके ।

त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन

कुर्वन्ति गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

त्वयि—आप में; अम्बुज-अक्ष—हे कमल जैसे नेत्रवाले प्रभु; अखिल-सत्त्व-धाम्नि—जगत के आदि कारण जिससे हर वस्तु उद्भूत होती है और जिसमें समस्त शक्तियाँ नवास करती हैं; समाधिना—स्थायी ध्यान तथा पूर्ण तल्लीनता (आपके विचारों में) द्वारा; आवेशित—पूर्णतया तल्लीन, संलग्न; चेतसा—चेतना द्वारा; एके—आपके चरणकमलों के विषय में चिन्तन की एक विधि; त्वत्-पाद-पोतेन—आपके चरणकमल रूपी नाव में चढ़कर; महत्-कृतेन—ऐसे कार्य द्वारा जो अत्यन्त शक्तिशाली माना जाता है या जो महाजनों द्वारा सम्पन्न किया जाता है; कुर्वन्ति—करते हैं; गोवत्स-पदम्—बछड़े के खुर के निशान तुल्य; भव-अब्धिम्—संसार सागर को ।

हे कमलनयन प्रभु, सम्पूर्ण सृष्टि के आगार रूप आपके चरणकमलों में अपना ध्यान एकाग्र करके तथा उन्हीं चरणकमलों को संसार-सागर को पार करने वाली नाव मानकर मनुष्य महाजनों (महान् सन्तों, मुनियों तथा भक्तों) के चरणचिन्हों का अनुसरण करता है । इस सरल सी विधि से वह अज्ञान सागर को इतनी आसानी से पार कर लेता है मानो कोई बछड़े के खुर का चिन्ह पार कर रहा हो ।

तात्पर्य : जीवन का असली उद्देश्य बारम्बार जन्म-मृत्यु के अज्ञान-सागर को पार करना है । किन्तु अज्ञान के अंधकार में रहने वाले इस उद्देश्य को नहीं जानते । उल्टे वे भौतिक प्रकृति की तरंगों द्वारा बहा ले जाये जाने के कारण (*प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वशः*) बारम्बार जन्म-मृत्यु के कष्टों को झेलते रहते हैं (*मृत्युसंसारवर्त्मनि*) । किन्तु जिन व्यक्तियों ने भक्तों की संगति से ज्ञान प्राप्त कर लिया है वे महाजनों का (*महत्कृतेन*) अनुसरण करते हैं । ऐसे लोग अपने चित्त को भगवान् के चरणकमलों पर केन्द्रित करते हैं और नवधा भक्ति में से एक या अधिक को (*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्*) ग्रहण करते हैं । केवल इसी विधि से मनुष्य अज्ञान के दुर्लघ्य संसार को पार कर सकता है ।

भक्ति चाहे जिस रूप में हो, शक्तिशाली होती है । *श्रीविष्णोः श्रवणे परीक्षिद् अभवद् वैयासकिः*

कीर्तने (भक्तिरसामृत सिन्धु १.२.२६५)। इस श्लोक के अनुसार महाराज परीक्षित अपने मन को भगवान् के नाम, गुण तथा लीलाओं के श्रवण में एकाग्र करने के कारण मुक्त हुए। इसी तरह शुकदेव गोस्वामी भी केवल भगवान् के गुणगान से तथा श्रीकृष्ण के ही विषय में प्रवचन करके मुक्त बने जिससे संपूर्ण श्रीमद्भागवतम् की रचना हुई। कोई भी व्यक्ति भगवान् के सख्य—भगवान् की सखा-भाव से भक्ति—द्वारा भी मुक्त हो सकता है। भक्ति में ऐसी शक्ति है जैसाकि भगवान् के अनेक शुद्ध भक्तों द्वारा प्रस्तुत किये गये दृष्टान्तों से हम सीखते हैं।

स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मुनिः ।

प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिवैयासकिर्वयम् ॥

(श्रीमद्भागवत ६.३.२०)

हमें ऐसे ही भक्तों के चरणचिह्नों का अनुसरण करना है क्योंकि इस एक सरल विधि से ही मनुष्य अज्ञान के सागर को उसी तरह से पार कर सकता है, जिस तरह बछड़े के खुर से उत्पन्न एक छोटे चिह्न को।

यहाँ पर भगवान् को *अम्बुजाक्ष* अर्थात् कमलनेत्र कहा गया है। भगवान् के कमल जैसे नेत्रों को देखकर मनुष्य इतना तुष्ट हो जाता है कि वह अन्य किसी वस्तु की ओर अपनी दृष्टि उठाना नहीं चाहता। भगवान् के दिव्य स्वरूप को देख करके ही भक्त अपने हृदय में स्थित भगवान् में तल्लीन हो जाता है। यह तल्लीनता ही *समाधि* कहलाती है। *ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः* (*भागवत १२.१३.१*)। योगी भगवान् के विचारों में लीन रहता है क्योंकि उसके हृदय में स्थित भगवान् के चिन्तन के अतिरिक्त उसके पास कोई अन्य कार्य नहीं रहता। कहा भी गया है—

समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं

महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ।

भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं

पदं पदं यद् विपदां न तेषाम् ॥

“जिसने उन भगवान् के चरणकमल रूपी नौका ग्रहण कर ली है, जो संसार के आश्रय हैं और मुर राक्षस के शत्रु, मुरारी नाम से विख्यात हैं, उसके लिए यह भवसागर बछड़े के खुर में भरे हुए जल के

समान है। उसका लक्ष्य परं पदम् अर्थात् वैकुण्ठ है जहाँ न तो भौतिक क्लेश हैं और न पग पग पर विपदा है। (भागवत १०.१४.५८) ब्रह्माजी तथा शिव जैसे महाजनों ने (स्वयम्भून्नरिदःशम्भुः) इस विधि की संस्तुति की है, अतः अज्ञान को लाँघने के लिए हमें इसी विधि को ग्रहण करना चाहिए। यह अत्यन्त सरल है किन्तु हमें महाजनों के पदचिह्नों का अनुसरण करना चाहिए तभी सफलता मिल सकती है।

महत्कृतेन शब्द के विषय में यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि बड़े-बड़े भक्तों द्वारा दिखलाई गई विधि उन्हीं के लिए नहीं अपितु अन्यो के लिए भी होती है। जो वस्तुओं को इस तरह सरल बनाते हैं उससे न केवल उन्हें ही अपितु उनके अनुसरण करने वालों को भी आसानी होती है। इस श्लोक में अज्ञान-सागर को पार करने के लिए जो विधि बतलाई गई है, वह न केवल एक भक्त के लिए अपितु भक्त का अनुसरण करने वाले किसी सामान्य व्यक्ति के लिए भी है (महाजनो यने गतः स पन्थाः)।

स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्
भवार्षावं भीममदभ्रसौहृदाः ।
भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र ते
निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

स्वयम्—खुद, आप; समुत्तीर्य—पार करके; सु-दुस्तरम्—दुर्लभ; द्युमन्—अज्ञान के इस लोक के अंधकार में सूर्य के समान चमकने वाले हे प्रभु; भव-अर्णवम्—संसार सागर को; भीमम्—भयानक; अदभ्र-सौहृदाः—भक्तगण जो पतितात्माओं के प्रति सदैव मैत्रीभाव रखते हैं; भवत्-पद-अम्भोरुह—आपके चरणकमल; नावम्—पार करने के लिए नाव को; अत्र—इस संसार में; ते—वे (वैष्णवजन); निधाय—पीछे छोड़कर; याताः—चरम लक्ष्य, वैकुण्ठ; सत्-अनुग्रहः—भक्तों पर सदैव कृपालु तथा दयालु; भवान्—आप।

हे द्युतिपूर्ण प्रभु, आप अपने भक्तों की इच्छा पूरी करने के लिए सदा तैयार रहते हैं इसीलिए आप वांछा-कल्पतरु कहलाते हैं। जब आचार्यगण अज्ञान के भयावह भवसागर को तरने के लिए आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते हैं, तो वे अपने पीछे अपनी वह विधि छोड़े जाते हैं जिससे वे पार करते हैं। चूँकि आप अपने अन्य भक्तों पर अत्यन्त कृपालु रहते हैं अतएव उनकी सहायता करने के लिए आप इस विधि को स्वीकार करते हैं।

तात्पर्य : इस कथन से पता चलता है कि किस तरह दयालु आचार्यगण तथा कृपालु भगवान् मिलकर उस गंभीर भक्त की सहायता करते हैं, जो भगवद्धाम वापस जाना चाहता है। श्री चैतन्य

महाप्रभु ने श्रील रूप गोस्वामी को शिक्षा देते हुए कहा था—

ब्रह्माण्ड भ्रमिते कोन भाग्यवान् जीव ।

गुरु-कृष्ण-प्रसादे पाय भक्ति-लता-बीज ॥

(चै.च. मध्य १९.१५१)

गुरु तथा कृष्ण की दया से ही मनुष्य को *भक्तिलता बीज* प्राप्त हो सकता है। गुरु का कर्तव्य है कि काल, परिस्थिति तथा पात्र के अनुसार साधनों की खोज करे जिससे मनुष्य को भक्ति करने के लिए प्रेरित किया जा सके क्योंकि भगवद्धाम वापस जाने वाले व्यक्ति से कृष्ण यह भक्ति स्वीकार करते हैं। भाग्यवान् व्यक्ति सारे ब्रह्माण्ड का भ्रमण करने के बाद इस भौतिक जगत में ऐसे गुरु या आचार्य की शरण खोजता है, जो भक्त को परिस्थिति के अनुसार सेवा करने की उपयुक्त विधियों का प्रशिक्षण दे सके जिससे भगवान् उसकी सेवा स्वीकार कर लें। इससे पात्र को अपने चरम गन्तव्य तक पहुँचने में सुविधा होती है। अतः आचार्य का कर्तव्य है कि वह ऐसे साधन खोजे जिससे भक्त शास्त्रोक्त विधि से भक्ति कर सके। उदाहरणार्थ, रूप गोस्वामी ने आगे आने वाले भक्तों की सहायता करने के लिए 'भक्तिरसामृतसिन्धु' जैसे ग्रंथ का प्रकाशन किया। इस तरह आचार्यों का कर्तव्य है कि वे भावी पात्रों को भक्ति करने में सहायक पुस्तकें प्रकाशित करें जिससे लोग परमेश्वर के कृपा से भगवद्धाम वापस जा सकें। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में इसी मार्ग की संस्तुति की जाती है और इसीका पालन किया जाता है। इस तरह भक्तों को सलाह दी गई है कि वे चार पापकर्मों से बचें। ये हैं—अवैध यौन, नशा, मांसाहार तथा जुआ। उन्हें प्रति दिन सोलह मालाएँ जप करने की भी सलाह दी गई है। ये प्रामाणिक आदेश हैं। चूँकि पाश्चात्य देशों में सतत कीर्तन संभव नहीं है अतः बनावटी तरीके से हरिदास ठाकुर की नकल नहीं करनी चाहिए किन्तु इसी विधि का पालन करना चाहिए। जो लोग अधिकारियों द्वारा प्रकाशित विविध पुस्तकों में संस्तुत विधि-विधानों का पालन करते हैं, कृष्ण उन्हें भक्त के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। अज्ञान के सागर को पार करने के लिए भगवान् के चरणकमलों की नौका बनाने की उपयुक्त विधि आचार्य द्वारा बतलाई जाती है और यदि पालनकर्ता इस विधि का दृढ़ता से पालन करता है, तो वह भगवद्कृपा से गन्तव्य तक अवश्य पहुँच जाता है। यह विधि *आचार्य सम्प्रदाय* कहलाती है। इसीलिए कहा गया है कि *सम्प्रदायविहीना येमन्त्रास्ते निष्फला मताः (पद्मपुराण)*।

आचार्य-सम्प्रदाय नितान्त प्रामाणिक है। इसलिए इस सम्प्रदाय को स्वीकार करना चाहिए अन्यथा सारा प्रयास व्यर्थ जाएगा। इसीलिए श्रील नरोत्तमदास ने गीत गाया है—

ताँदर चरण सेवि भक्त सने वास।

जनमे जनमे ह्य, एइ अभिलाष ॥

मनुष्य को चाहिए कि आचार्य के चरणकमलों की सेवा करे और भक्तों के समाज में रहे। तब भवसागर पार करने का प्रयास सार्थक होगा।

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिन-

स्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ।

आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः

पतन्त्यधोऽनाहतयुष्मदङ्घ्रयः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

ये अन्ये—कोई या अन्य सभी; अरविन्द-अक्ष—हे कमलनेत्र; विमुक्त-मानिनः—भव-कल्मष के बन्धन से अपने को झूठे ही मुक्त मानने वाले; त्वयि—तुम में; अस्त-भावात्—विविध रूप से सोचते हुए किन्तु आपके चरणकमलों के विषय में अधिक न जानने की इच्छा रखते हुए; अविशुद्ध-बुद्धयः—जिनकी बुद्धि अब भी शुद्ध नहीं है और जो जीवन-लक्ष्य को नहीं जानते; आरुह्य—प्राप्त करके भी; कृच्छ्रेण—कठिन तपस्या तथा श्रम के द्वारा; परम् पदम्—सर्वोच्च पद (अपनी कल्पना के अनुसार); ततः—उस पद से; पतन्ति—गिरते हैं; अधः—पुनः नीचे भवसागर में; अनाहत—उपेक्षा किया हुआ; युष्मत्—आपके; अङ्घ्रयः—चरणकमल।

(कोई कह सकता है कि भगवान् के चरणकमलों की शरण खोजने वाले भक्तों के अतिरिक्त भी ऐसे लोग हैं, जो भक्त नहीं हैं किन्तु जिन्होंने मुक्ति प्राप्त करने के लिए भिन्न विधियाँ अपना रखी हैं। तो उनका क्या होता है? इसके उत्तर में ब्रह्माजी तथा अन्य देवता कहते हैं) हे कमलनयन भगवान्, भले ही कठिन तपस्याओं से परम पद प्राप्त करने वाले अभक्तगण अपने को मुक्त हुआ मान लें किन्तु उनकी बुद्धि अशुद्ध रहती है। वे कल्पित श्रेष्ठता के अपने पद से नीचे गिर जाते हैं, क्योंकि उनके मन में आपके चरणकमलों के प्रति कोई श्रद्धाभाव नहीं होता।

तात्पर्य : भक्तों के अलावा अन्य अभक्त भी हैं, जो कर्मी, ज्ञानी, योगी, परमार्थवादी, उपकारी, राजनीतिज्ञ, निर्विशेषवादी तथा शून्यवादी कहलाते हैं। अभक्तों के अनेक भेद हैं जिनके मुक्ति के मार्ग अलग-अलग हैं किन्तु भगवान् के चरणकमलों के आश्रय को न जानने से वे अपने को मुक्त तथा परमपद प्राप्त हुआ सोचते हुए भी नीचे गिरते हैं। *भगवद्गीता* (९.३) में भगवान् ने स्पष्ट कहा है—

अश्रद्धधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।

अप्राप्य मां निवर्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥

“हे शत्रुओं के विजेता! जो लोग भक्ति के पथ के प्रति श्रद्धावान् नहीं हैं, वे मुझे नहीं प्राप्त कर सकते। वे इस भौतिक जगत में जन्म तथा मृत्यु के लिए वापस लौट आते हैं।” चाहे कोई कर्मी हो या ज्ञानी, योगी, उपकारी, राजनीतिज्ञ या अन्य कुछ हो, यदि उसके मन में भगवान् के चरणकमलों के प्रति प्रेम नहीं होता तो वह नीचे गिरता है। इस श्लोक में ब्रह्माजी ने यही निणर्य दिया है।

कुछ लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं कि चाहे जिस विधि को अपनाया जाय उसी लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है किन्तु इस श्लोक में इसका परिहार किया गया है और ऐसे व्यक्तियों को *विमुक्तमानिनः* कहा गया है, जो इसका सूचक है कि यद्यपि ऐसे लोग अपने को परम सिद्धि प्राप्त हुआ समझते हैं किन्तु यह यथार्थ नहीं होता। सम्प्रति संसार के बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ ऐसा सोचते हैं कि योजना बनाकर वे राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री जैसे सर्वोच्च राजनीतिक पद पर प्रतिष्ठित हो सकते हैं किन्तु हम देखते हैं कि ऐसे राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री अभक्त होने के कारण इसी जीवन में नीचे गिर जाते हैं (*पतन्त्यधः*)। राष्ट्रपति या प्रधान मंत्री बनना सरल नहीं है। उस पद को प्राप्त करने के लिए कठिन श्रम करना होता है (*आरुह्य कृच्छ्रेण*)। और यदि अपने लक्ष्य तक कोई पहुँच भी जाता है, तो किसी भी समय भौतिक प्रकृति उसे टुकरा सकती है। मानव समाज में ऐसे अनेक दृष्टान्त मिलते हैं जब बड़े बड़े राजनीतिज्ञ सरकार से पदच्युत होकर विस्मृति के गर्भ में विलीन हो गये। इसका कारण है अविशुद्ध बुद्धयः— उनकी बुद्धि अशुद्ध है। शास्त्र का कथन है—*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्* (*भागवत ७.५.३१*)। विष्णु भक्त होकर जीवन-सिद्धि प्राप्त की जा सकती है लेकिन लोग इसे जानते नहीं। इसीलिए *भगवद्गीता* (१२.५) में कहा गया है—*क्लेशोऽधिकतरस्तेषां अव्यक्तासक्त चेतसाम्।* जो लोग अन्ततोगत्वा भगवान् को स्वीकार नहीं करते और भक्ति नहीं करते प्रत्युत निर्विशेषवाद और शून्यवाद में लिप्त रहते हैं उन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बहुत श्रम करना पड़ता है—

श्रेयः सृतिभक्तिमुदस्यतेविभो

क्लिश्यन्ति ये केवल-बोध-लब्धये।

(*भागवत १०.१४.४*)

ज्ञान प्राप्त करने के लिए ऐसे लोग अत्यधिक श्रम करते हैं और घोर तप करते हैं किन्तु उससे श्रम तथा तपस्या की उपलब्धि भले हो किन्तु इनसे जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती।

ध्रुव महाराज पहले अपने पिता से भी बड़ा साम्राज्य तथा भौतिक सम्पत्ति प्राप्त करना चाहते थे किन्तु जब भगवान् वर देने के लिए उनके समक्ष प्रकट हुए तो ध्रुव महाराज ने यह कहकर मना कर दिया—*स्वामिन् कृतार्थोऽस्मि वरं न याचे*—अब मैं पूरी तरह सन्तुष्ट हूँ। मुझे कोई भौतिक वर नहीं चाहिए। (*हरि भक्ति सुधोदय* ७.२८) यही जीवनसिद्धि हैं। यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः (*भगवद्गीता* ६.२२)। भगवान् के चरणकमलों की शरण प्राप्त हो जाने पर मनुष्य पूर्णरूपेण संतुष्ट हो जाता है और उसे कोई भौतिक वर माँगने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

रात्रि में कमल नहीं दिखते क्योंकि कमल दिन में ही खिलते हैं। *अतः अरविन्दाक्ष* शब्द महत्त्वपूर्ण है। जो व्यक्ति भगवान् के कमलनयनों अथवा उनके दिव्य रूप से मोहित नहीं होता वह उसी तरह अंधकार में रहता है जैसे कमल को न देखने वाला। जिसने श्यामसुन्दर के कमलनेत्रों तथा उनके दिव्य रूप को नहीं देखा उसका जीवन व्यर्थ है। *प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्तिविलोचनेन सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति*। जो लोग भगवान् के प्रेम में अनुरक्त हैं, वे सदैव उनके कमलनेत्रों तथा कमल-चरणों का दर्शन करते हैं किन्तु अन्य लोग भगवान् के सौन्दर्य का दर्शन नहीं कर पाते अतः वे *अनाहत युष्मदङ्घ्रयः* अर्थात् आपके साकार स्वरूप की उपेक्षा करने वाले कहलाते हैं। जो लोग भगवान् के स्वरूप का अनादर करते हैं उनको जीवन-पथ में पग-पग पर असफलता मिलती है किन्तु यदि कोई नाममात्र को भी भगवत्प्रेम उत्पन्न कर लेता है, तो वह अनायास ही मुक्त हो जाता है (*स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्*)। इसीलिए भगवान् ने *भगवद्गीता* (९.३४) में संस्तुति की है—*मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु*—केवल मेरा चिन्तन करो, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा करो और मुझे ही नमस्कार करो। केवल इसी विधि से मनुष्य भगवद्धाम वापस जा सकता है और चरम सिद्धि प्राप्त कर सकता है। भगवान् आगे भी पुष्टि करते हैं (*भगवद्गीता* १८.५४-५५)

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।

समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

“इस तरह दिव्य पद को प्राप्त व्यक्ति तुरन्त परब्रह्म का साक्षात्कार करता है और पूर्ण रूप से प्रसन्न रहता है। वह न शोक करता है न किसी वस्तु की इच्छा करता है। वह हर जीव पर समभाव रखता है। ऐसी स्थिति में उसे मेरी शुद्ध भक्ति प्राप्त होती है। केवल भक्ति द्वारा भगवान् के यथारूप को जाना जा सकता है। जब वह ऐसी भक्ति द्वारा पूर्णतया ईशभावनाभावित हो जाता है, तो वह भगवद्धाम में प्रवेश कर सकता है।”

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्

भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ।

त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया

विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

तथा—उनकी (अभक्तों की) तरह; न—नहीं; ते—वे (भक्तगण); माधव—हे लक्ष्मीपति भगवान्; तावकाः—भक्तिमार्ग के अनुयायी, भक्तगण; क्वचित्—किसी भी परिस्थिति में; भ्रश्यन्ति—नीचे गिरते हैं; मार्गात्—भक्ति मार्ग से; त्वयि—आप में; बद्ध-सौहृदाः—आपके चरणकमलों में पूरी तरह से अनुरक्त होने के कारण; त्वया—आपके द्वारा; अभिगुप्ताः—सारे संकटों से सुरक्षित; विचरन्ति—विचरण करते हैं; निर्भयाः—निर्भीक होकर; विनायक-अनीकप—शत्रु जो भक्ति विचारधारा का विरोध करने के लिए साज-सामान रखते हैं; मूर्धसु—अपने सिरों पर; प्रभो—हे प्रभु.

हे माधव, पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर, हे लक्ष्मीपति भगवान्, यदि आपके प्रेमी भक्तगण कभी भक्तिमार्ग से च्युत होते हैं, तो वे अभक्तों की तरह नहीं गिरते क्योंकि आप तब भी उनकी रक्षा करते हैं। इस तरह वे निर्भय होकर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मस्तकों को झुका देते हैं और भक्ति में प्रगति करते रहते हैं।

तात्पर्य : सामान्यतया भक्तों का पतन नहीं होता किन्तु यदि परिस्थितिवश ऐसा हो भी जाय तो भगवान् उनकी प्रबल अनुरक्ति के कारण सभी परिस्थितियों में उन्हें संरक्षण प्रदान करते हैं। भक्तगण गिरकर भी इतने प्रबल रहते हैं कि अपने शत्रुओं के मस्तकों पर चल सकें। हमने वास्तव में देखा है कि हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन के अनेक विरोधी हैं, जैसे “डीप्रोग्रामर्स” जिन्होंने हमारे भक्तों के विरुद्ध एक भारी मुकद्दमा चला रखा था। हमने सोच रखा था कि इस मुकद्दमा के तय होने में काफी समय लगेगा किन्तु भक्तों की रक्षा भगवान् करते हैं अतः हम आशा के विपरीत एक दिन में ही मुकद्दमा जीत गये। इस तरह जो मुकद्दमा सालों चलने वाला था वह भगवान् के संरक्षण के कारण एक

ही दिन में तय हो गया क्योंकि भगवद्गीता (९.३१) में भगवान् ने वादा किया है—*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*—हे कुन्तीपुत्र! तुम निर्भय होकर घोषित कर दो कि मेरा भक्त कभी विनष्ट नहीं होता। इतिहास में भक्तों के ऐसे अनेक दृष्टान्त हैं—यथा चित्रकेतु, इन्द्रद्युम्न तथा महाराज भरत जो परिस्थितिवश च्युत हुए किन्तु फिर भी उनकी रक्षा हुई। उदाहरणार्थ, महाराज भरत एक हिरन के प्रति अपनी अनुरक्ति के कारण अगले जन्म में हिरन बने क्योंकि मरते समय उन्होंने हिरन का ही चिन्तन किया था (*यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्*)। भगवान् की सुरक्षा पाने से हिरन ने भगवान् के साथ अपने सम्बन्ध को स्मरण रखा जिससे अगले जन्म में उसका जन्म एक अच्छे ब्राह्मण परिवार में हुआ और उसने भक्ति सम्पन्न की (*शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते*)। इसी तरह चित्रकेतु का पतन हुआ और वह राक्षस वृत्रासुर बना किन्तु उसकी भी रक्षा की गई। इस तरह यदि कोई भक्ति योग के मार्ग से नीचे गिरता भी है, तो अन्ततोगत्वा उसकी रक्षा होती है। यदि कोई भक्त दृढ़ रूप से भक्तियोग में स्थित है, तो भगवान् उसकी सुरक्षा का वचन देते हैं (*कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति*)। किन्तु यदि परिस्थितिवश भक्त का पतन हो भी जाय तो माधव उसकी रक्षा करते हैं।

माधव शब्द सार्थक है। *मा*, लक्ष्मी, सभी ऐश्वर्यों की माता सदैव भगवान् के साथ रहती हैं और यदि भक्त भगवान् के सम्पर्क में रहता है, तो भगवान् के सारे ऐश्वर्य उसकी सहायता के लिए तैयार रहते हैं।

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।

तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥

(भगवद्गीता १८.७८)

जहाँ भगवान् कृष्ण तथा उनका भक्त अर्जुन अर्थात् पार्थ रहते हैं वहाँ विजय, ऐश्वर्य, असाधारण शक्ति तथा नैतिकता रहते हैं। भक्त का ऐश्वर्य *कर्मकाण्डविचार* का प्रतिफल नहीं होता। भक्त सदैव भगवान् के सारे ऐश्वर्यों द्वारा सुरक्षित रहता है। कोई भी उससे उन्हें वंचित नहीं कर सकता (*तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्*)। इस तरह भक्त अपने किसी भी विरोधी द्वारा परास्त नहीं किया जा सकता। इसलिए भक्त को चाहिए कि जानबूझ कर भक्ति के मार्ग से विचलित न हो। दृढ़ भक्त की

सुरक्षा भगवान् द्वारा निश्चित है।

सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान्स्थितौ
शरीरिणां श्रेयउपायनं वपुः ।
वेदक्रियायोगतपःसमाधिभि-
स्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—अस्तित्व; विशुद्धम्—दिव्य, तीन गुणों से अतीत; श्रयते—स्वीकार करता है; भवान्—आप; स्थितौ—इस जगत के पालन के समय; शरीरिणाम्—सारे जीवों के; श्रेयः—परम कल्याण का; उपायनम्—लाभ के लिए; वपुः—दिव्य शरीर; वेद-क्रिया—वेदविहित अनुष्ठानों के द्वारा; योग—भक्ति द्वारा; तपः—तपस्या द्वारा; समाधिभिः—समाधि द्वारा; तव—तुम्हारी; अर्हणम्—पूजा; येन—ऐसे कार्यों से; जनः—मानव समाज; समीहते—कृतज्ञता प्रकट करता है।

हे परमेश्वर, पालन करते समय आप त्रिगुणातीत दिव्य शरीर वाले अनेक अवतारों को प्रकट करते हैं। जब आप इस तरह प्रकट होते हैं, तो जीवों को वैदिक कर्म—यथा अनुष्ठान, योग, तपस्या, समाधि आपके चिंतन में भावपूर्ण तल्लीनता—में युक्त होने की शिक्षा देकर उन्हें सौभाग्य प्रदान करते हैं। इस तरह आपकी पूजा वैदिक नियमों के अनुसार की जाती है।

तात्पर्य : ' भगवद्गीता (१८.३) में कहा गया है कि वैदिक कर्मकाण्ड, दान, तपस्या तथा अन्य संस्तुत कार्यों का परित्याग नहीं करना चाहिए (यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यम्)। जो आत्मासाक्षात्कार में बहुत उन्नत हो उसे भी वैदिक नियमों का पालन करना चाहिए (१८.५)— यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्। यहाँ तक कि निम्नतम अवस्था में भी कर्मियों को सलाह दी जाती है कि वे भगवान् के निमित्त कार्य करें।

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र

लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।

(भगवद्गीता ३.९)

“विष्णु के लिए यज्ञ कर्म करना होता है अन्यथा कर्म मनुष्य को इस भौतिक जगत से बाँध देता है।” यज्ञार्थात् कर्मणः शब्द सूचित करते हैं कि सभी प्रकार के कर्म करते हुए मनुष्य को स्मरण रखना चाहिए कि ये कर्म भगवान् को तुष्ट करने के लिए किये जाँय (स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य)। वैदिक नियमों के अनुसार मानव समाज का विभाजन होना चाहिए (चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम्)। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों में से हर एक को भगवान् की पूजा करनी सीखना चाहिए (तमभ्यर्च्य)। यही असली मानव

समाज है और इस प्रणाली के बिना हम पशु-समाज में रह जाते हैं।

मानव समाज के आधुनिक कार्यों का वर्णन *श्रीमद्भागवत* में *गोखर* (गौओं और गधों) के कार्यों के रूप में हुआ है— *स एव गोखरः*। हर व्यक्ति देहात्मबुद्धि से कार्य करता है, जिसमें समाज, मैत्री तथा आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों में सुधार के प्रति प्रेम निहित रहता है। इस तरह सारे कार्यकलाप अविद्या में सम्पन्न होते हैं। इसलिए भगवान् हमें सिखलाने के लिए आते हैं कि किस तरह वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार कर्म करना चाहिए। इस कलियुग में पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु के रूप में प्रकट हुए और यह उपदेश दिया कि इस युग में वैदिक कार्यकलापों को ठीक से सम्पन्न नहीं किया जा सकता क्योंकि लोग अत्यन्त पतित हो चुके हैं। उन्होंने शास्त्रों के आधार पर यह संस्तुति की—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।

कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

“कलह तथा दिखावे के इस युग में उद्धार का एकमात्र साधन है भगवन्नाम का कीर्तन। इसके अलावा कोई दूसरा रास्ता नहीं है।” इसीलिए कृष्णभावनामृत आन्दोलन विश्वभर के लोगों को सिखा रहा है कि हरे कृष्ण मंत्र का किस तरह कीर्तन किया जाय और यह सभी स्थानों तथा सभी समयों में अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ है। हमें वैदिक सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए भगवान् प्रकट होते हैं जिससे हम उन्हें समझ सकें (*वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः*)। हमें यह जानना चाहिए कि जब कृष्ण तथा श्री चैतन्य महाप्रभु प्रकट हुए थे तो वे अपने शुद्धसत्त्व शरीरों के साथ प्रकट हुए थे। हमें कृष्ण अथवा चैतन्य महाप्रभु के शरीरों को अपने जैसा भौतिक मानने की भूल नहीं करनी चाहिए क्योंकि वे समस्त मानव समाज के लाभ हेतु प्रकट हुए थे। भगवान् अहैतुकी कृपावश विभिन्न युगों में अपने शुद्धसत्त्व दिव्य शरीर के साथ मानव समाज के दिव्य स्तर तक उत्थान हेतु प्रकट होते हैं। दुर्भाग्यवश आधुनिक राजनेता तथा अन्य नेता जीवन की स्थूल सुविधाओं (*यस्यात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुके*) पर बल देते हैं और इस या उस वाद के कार्यकलापों पर अपना ध्यान एकाग्र करते हैं, जिन्हें वे कई प्रकार की पुष्पित सुन्दर भाषा में वर्णन करते हैं। मूलतः ऐसे कार्यकलाप पशुओं के कार्यकलाप हैं (*स एव गोखरः*)। हमें *भगवद्गीता* से कर्म करना सीखना चाहिए जो मानव ज्ञान के हेतु सब कुछ बताती है। इस प्रकार

हम इस कलियुग में भी सुखी बन सकते हैं।

सत्त्वं न चेद्भातरिदं निजं भवेद्
विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ।
गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्
प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सत्त्वम्—शुद्धसत्त्व, दिव्य; न—नहीं; चेत्—यदि; धातः—समस्त कारणों के कारण; इदम्—यह; निजम्—मेरा, आध्यात्मिक; भवेत्—हो जाता; विज्ञानम्—दिव्य ज्ञान; अज्ञान-भिदा—तमोगुण को भगाने वाला; अपमार्जनम्—पूर्णतया से विलुप्त; गुण-प्रकाशैः—ऐसा दिव्य ज्ञान जागृत करके; अनुमीयते—प्रकट होता है; भवान्—आप; प्रकाशते—प्रकट होते हैं; यस्य—जिसके; च—तथा; येन—जिससे; वा—अथवा; गुणः—गुण या बुद्धि।

हे कारणों के कारण ईश्वर, यदि आपका दिव्य शरीर गुणातीत न होता तो मनुष्य पदार्थ तथा अध्यात्म के अन्तर को न समझ पाता। आपकी उपस्थिति से ही आपके दिव्य स्वभाव को जाना जा सकता है क्योंकि आप प्रकृति के नियन्ता हैं। आपके दिव्य स्वरूप की उपस्थिति से प्रभावित हुए बिना आपके दिव्य स्वभाव को समझना कठिन है।

तात्पर्य : कहा गया है—*त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।* अध्यात्म को जाने बिना भगवान् के दिव्य स्वभाव को नहीं जाना जा सकता। *श्रीमद्भागवत* (१०.१४.२९) में कहा गया है—

अथापि ते देव पदाम्बुजद्वय
प्रसादलेशानुगृहीत एव हि ।
जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो
नचान्यएकोऽपिचिरं विचिन्वन् ॥

भगवान् की कृपा होने पर ही उन्हें समझा जा सकता है। प्रकृति के गुणों में स्थित रह कर हजारों वर्षों के चिन्तन के बाद भी उन्हें नहीं समझा जा सकता। भगवान् के असंख्य रूप हैं (*रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्*) और यदि भगवान् रामचन्द्र, नृसिंहदेव, कृष्ण तथा बलराम जैसे रूप दिव्य न होते तो अनन्तकाल से भक्तों द्वारा इनकी पूजा क्यों चली आ रही होती? *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः* (भगवद्गीता १८.५५)। जो लोग भगवान् की उपस्थिति में अपने दिव्य स्वभाव को जागृत कर लेते हैं और भक्ति के नियमों का पालन करते हैं, वे ही भगवान् कृष्ण, भगवान् रामचन्द्र तथा अन्य अवतारों को, जो इस भौतिक जगत के नहीं होते अपितु जनता के हितार्थ वैकुण्ठ से आते

हैं, समझ सकते हैं। जो इस विधि का पालन नहीं करता वह प्रकृति के अनुसार मनमाने ढंग से ईश्वर के किसी रूप की कल्पना कर लेता है और भगवान् के प्रति असली ज्ञान को कभी जागृत नहीं कर सकता। *भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः* कथन इस बात का द्योतक है कि भक्ति के विधानों के अनुसार भगवान् की पूजा किये बिना दिव्य स्वभाव को जागृत नहीं किया सकता। भगवान् की अनुपस्थिति में भी मूर्तिपूजा भक्त के दिव्य स्वभाव को जागृत करनेवाली है, जिससे भक्त भगवान् के चरणकमलों में और अधिक अनुरक्त हो जाता है।

कृष्ण के प्रादुर्भाव से भगवान् की समस्त काल्पनिक मूर्तिकला का उत्तर मिल जाता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने गुणानुसार भगवान् के स्वरूप की कल्पना करता है। *ब्रह्म-संहिता* में कहा गया है कि भगवान् सबसे प्राचीन पुरुष हैं। इसलिए कुछ धार्मिक समुदाय ईश्वर को अत्यन्त प्राचीन मानते हैं अतः वे ईश्वर का अंकन एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष के रूप में करते हैं। किन्तु उसी *ब्रह्म-संहिता* में इसका विरोध हुआ है—यद्यपि ईश्वर समस्त जीवों में प्राचीन हैं किन्तु साथ ही वे नित्य युवा हैं। *श्रीमद्भागवत* में उनका यथार्थ वर्णन इस प्रकार हुआ है—*विज्ञानम् अज्ञानभिदापमार्जनम्*। *विज्ञान* का अर्थ है ईश्वर का दिव्य ज्ञान। *विज्ञान* अनुभूत ज्ञान भी है। दिव्य ज्ञान को शिष्य-प्रणाली की परम्परा से उसी तरह ग्रहण किया जाता है, जिस तरह ब्रह्मा ने कृष्ण के ज्ञान को *ब्रह्म-संहिता* में प्रस्तुत किया है। *ब्रह्म-संहिता* विज्ञान है, जो ब्रह्मा द्वारा अनुभव किया गया दिव्य अनुभव है। इस तरह उन्होंने दिव्य धाम में कृष्ण की लीलाओं को तथा उनके स्वरूप को प्रस्तुत किया। *अज्ञानभिदा* का अर्थ है “जो समस्त प्रकार की कल्पनाओं का सामना कर सके”। लोग अज्ञानवश भगवान् के स्वरूप की कल्पना करते हैं। इस तरह उनकी कल्पनाओं के अनुसार कभी उनका स्वरूप होता है, तो कभी नहीं भी होता। लेकिन *ब्रह्म-संहिता* में कृष्ण की प्रस्तुति एक विज्ञान है—विशिष्ट अनुभूत ज्ञान जिसे ब्रह्मा ने अनुभव करके प्रस्तुत किया और महाप्रभु चैतन्य ने स्वीकार किया। इसके विषय में किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। श्रीकृष्ण का स्वरूप, श्रीकृष्ण की बाँसुरी, श्रीकृष्ण का रंग—सभी वास्तविकताएँ हैं। यहाँ यह कहा गया है कि यह *विज्ञानम्* सभी प्रकार की कल्पनाओं को सदा पराजित करने वाला है। इसीलिए देवताओं ने स्तुति की कि जब तक आप कृष्ण रूप में प्रकट नहीं होते तब तक न तो *अज्ञानभिदा* (*काल्पनिक ज्ञान की अविद्या*) न ही *विज्ञानम्* की अनुभूति होगी। *अज्ञानभिदापमार्जनम्*—आपके प्राकट्य से अज्ञान की

कल्पना लुप्त हो जाएगी और ब्रह्माजी जैसे महाजनों का असली अनुभूत ज्ञान स्थापित हो सकेगा। लोग तीन गुणों से प्रभावित होकर अपनी प्रकृति के अनुसार विभिन्न प्रकारों में ईश्वर की कल्पना करते हैं। इस तरह ईश्वर को विभिन्न प्रकारों से प्रस्तुत किया जाता है किन्तु आपके प्राकट्य से इसका सत्यापन हो जाएगा कि ईश्वर का असली स्वरूप क्या है।”

निर्विशेषवादी सबसे बड़ी भूल यह सोचने की करते हैं कि जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो सतोगुणी पदार्थ का रूप स्वीकार करते हैं। वस्तुतः कृष्ण या नारायण का स्वरूप किसी भी भौतिक विचार से परे होता है। यहाँ तक कि सबसे बड़े निर्विशेषवादी शंकराचार्य ने भी स्वीकार किया है—
नारायणः परोऽव्यक्तात्—यह भौतिक सृष्टि *अव्यक्त* द्वारा की जाती है और कृष्ण किसी भी भौतिक विचार से परे हैं। *श्रीमद्भागवतम्* में इसे ही *शुद्धसत्त्व* या दिव्य कहा गया है। भगवान् सतोगुणी नहीं हैं क्योंकि वे भौतिक सतोगुण पद से ऊपर हैं। वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं।

देवताओं ने स्तुति की, “हे प्रभु! जब आप विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो परिस्थितियों के अनुसार भिन्न भिन्न नाम तथा स्वरूप धारण करते हैं। आपका नाम भगवान् कृष्ण है क्योंकि आप सर्व आकर्षक हैं। आप श्यामसुन्दर कहाते हैं क्योंकि आपका सौन्दर्य दिव्य है। *श्याम* का अर्थ साँवला है फिर भी वे कहते हैं कि आप हजारों कामदेवों से अधिक सुन्दर हैं। *कन्दर्प कोटि कमनीय*। यद्यपि आप श्याममेघ जैसे रंग वाले हैं किन्तु आप परम ब्रह्म हैं अतएव आपका सौन्दर्य कामदेव के कोमल शरीर से भी अधिक आकर्षक है। आप कभी कभी गिरिधारी कहलाते हैं क्योंकि आपने गोवर्धन पर्वत को उठाया था। आप कभी कभी नन्दनन्दन या वासुदेव या देवकीनन्दन कहलाते हैं क्योंकि आप महाराज नन्द, देवकी या वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होते हैं। निर्विशेषवादी सोचते हैं कि आपके अनेक नाम या स्वरूप आपके कार्य विशेष के अनुसार होते हैं क्योंकि वे आपको भौतिक दृष्टि से देखते हैं।”

“हे भगवन्! आपको समझने की विधि यह नहीं है कि आपके परम स्वभाव, रूप या कार्यकलापों की कल्पना की जाए। भक्ति में संलग्न होने पर ही आपके स्वभाव, आपके दिव्य स्वरूप, नाम तथा गुण को समझा जा सकता है। वास्तव में जिसे आपके चरणकमलों की सेवा करने में तनिक भी रुचि होती है, वह आपके दिव्य स्वभाव, रूप तथा गुण को समझ सकता है। अन्य लोग हजारों वर्षों तक चिन्तन करने के बाद भी आपके एक अंश को भी नहीं जान सकते।” दूसरे शब्दों में, भगवान् कृष्ण

कभी भी अभक्तों की समझ में नहीं आते क्योंकि कृष्ण का वास्तविक स्वरूप *योगमाया* के आवरण से ढका रहता है। *भगवद्गीता* से (७.२५) पुष्टि होती है—*नाहं प्रकाशः सर्वस्य*—मैं हर एक को दर्शन नहीं देता। जब कृष्ण आये तो वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में वास्तव में उपस्थित हुए और सबों ने उन्हें देखा। किन्तु सभी लोग यह नहीं समझ पाये थे कि वे भगवान् हैं। तथापि जो भी उनके सामने मरा उसे भवबन्धन से पूर्ण मुक्ति प्राप्त हुई और वह वैकुण्ठ लोक को गया।

चूँकि मूढ़ लोग अपनी आध्यात्मिक प्रकृति को जागृत नहीं करते इसलिए वे कृष्ण या राम को नहीं समझ पाते (*अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्*)। यहाँ तक कि बड़े बड़े विद्वान कृष्ण को काल्पनिक मानते हैं क्योंकि वे उन आचार्यों के प्रयासों पर विचार नहीं करते जिन्होंने अपने भाष्यों तथा लेखों में भक्ति की संस्तुति की है। दिव्य ज्ञान के अभाव तथा कृष्णभावनामृत जागृत करने की असफलता के कारण ऐसा होता है। मनुष्य को प्रश्न करने का इतना सामान्य बोध होना चाहिए कि यदि कृष्ण या राम काल्पनिक होते तो श्रीधर स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, वीर राघव, विजयध्वज, वल्लभाचार्य जैसे प्रकाण्ड विद्वान एवं गण्यमान्य आचार्य *श्रीमद्भागवत* का भाष्य लिखने तथा कृष्ण के विषय में रचना करने में इतना समय क्यों गँवाते।

न नामरूपे गुणजन्मकर्मभि-

निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ।

मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो

देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; नाम-रूपे—नाम तथा रूप; गुण—गुण; जन्म—जन्म; कर्मभिः—कार्यकलापों या लीलाओं से; निरूपितव्ये—निश्चित नहीं किये जा सकते; तव—आपके; तस्य—उसके; साक्षिणः—साक्षी; मनः—मन का; वचोभ्याम्—शब्दों द्वारा; अनुमेय—धारणा; वर्त्मनः—रास्ता; देव—हे प्रभु; क्रियायाम्—भक्तिकार्यों में; प्रतियन्ति—अनुभव करते हैं; अथ अपि—फिर भी; हि—निस्सन्देह (भक्तों द्वारा आप अनुभवगम्य हैं)।

हे परमेश्वर, आपके दिव्य नाम तथा स्वरूप का उन व्यक्तियों को पता नहीं लग पाता, मात्र जो केवल कल्पना के मार्ग पर चिन्तन करते हैं। आपके नाम, रूप तथा गुणों का केवल भक्ति द्वारा ही पता लगाया जा सकता है।

तात्पर्य : *पद्म पुराण* में कहा गया है—

अतः श्रीकृष्णनामादि न भवेद् ग्राह्यमिन्द्रियैः।

सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः ॥

“मनुष्य अपनी भौतिकता से दूषित इन्द्रियों के द्वारा श्रीकृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा लीलाओं की दिव्य प्रकृति को नहीं समझ सकता। जब वह भगवान् के प्रति दिव्य सेवाभाव से संतुप्त हो जाता है तभी उसे भगवान् के दिव्य नाम, रूप, गुण तथा लीलाएँ प्रकाशित होती हैं। चूँकि कृष्ण और उनके नाम, रूप तथा कार्यकलाप सभी दिव्य हैं अतः सामान्यव्यक्ति, या जिन्हें अत्यल्प ज्ञान है वे उन्हें नहीं समझ सकते। अभक्त विद्वान तक कृष्ण को काल्पनिक मानते हैं। यद्यपि तथाकथित विद्वान एवं भाष्यकार कृष्ण को ऐसा ऐतिहासिक पुरुष नहीं मानते जो महाभारत में अंकित कुरुक्षेत्र के युद्धस्थल में उपस्थित थे फिर भी वे *भगवद्गीता* तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों पर भाष्य लिखने को बाध्य होते हैं। *सेवोन्मुखे हि जिह्वादौ स्वयमेव स्फुरत्यदः*—कृष्ण की पूर्ण भावनाभावित सेवा में प्रवृत्त होने पर ही कृष्ण के नाम, रूप, गुण तथा कार्य स्वतः प्रकाशित होते हैं। इसकी पुष्टि कृष्ण के ही शब्दों में *भगवद्गीता* द्वारा (१८.५५) होती है—

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः ।

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥

“केवल भक्ति के द्वारा भगवान् को यथारूप में जाना जा सकता है। इस तरह कृष्णभावनाभावित होने पर ही भगवद्धाम में प्रवेश किया जा सकता है।” *सेवोन्मुख* होकर ही भगवान् के नाम, रूप तथा गुणों की अनुभूति हो सकती है।

देवताओं ने कहा, “हे प्रभु! निर्विशेषवादी अभक्त यह नहीं समझ सकते कि आपका नाम आपके स्वरूप से अभिन्न है।” ब्रह्म होने से भगवान् के नाम और वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर नहीं रहता। भौतिक जगत में स्वरूप और नाम में अन्तर होता है। आम का फल आम के नाम से भिन्न होता है। केवल “आम, आम, आम” कहने से किसी को आम का स्वाद नहीं मिल सकता। किन्तु भक्त जानता है कि भगवान् के नाम तथा रूप में कोई अन्तर नहीं होता इसीलिए वह हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे। हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे का कीर्तन करता है और अनुभव करता है कि वह सदैव कृष्ण के साथ है।

जो भगवद् ज्ञान में बड़े-चढ़े नहीं हैं, उन्हें कृष्ण अपनी दिव्य लीलाएँ दिखलाते हैं। ऐसे लोग

भगवान् की लीलाओं के चिन्तन मात्र से लाभ उठा सकते हैं। चूँकि भगवान् के दिव्य नाम और स्वरूप में कोई अन्तर नहीं होता इसलिए भगवान् की दिव्य लीलाओं और उनके स्वरूप में भी कोई अन्तर नहीं होता। अल्पज्ञों के लिए (यथा स्त्रियाँ, श्रमिक, या व्यापारी) महर्षि वेदव्यास ने *महाभारत* की रचना की। *महाभारत* में कृष्ण अपने विभिन्न कार्यकलापों में विद्यमान हैं। *महाभारत* इतिहास है और कृष्ण के दिव्य कार्यकलापों के अध्ययन, श्रवण तथा स्मरण से अल्पज्ञों को भी शुद्ध भक्तों का पद प्राप्त हो सकता है।

कृष्ण के चरणकमलों के ध्यान में निरन्तर लीन रहने वाले और कृष्णभावनामृत में रहते हुए भक्ति में मग्न रहने वाले शुद्ध भक्तों को कभी भी भौतिक जगत में रहने वाले नहीं मानना चाहिए। श्रील रूप गोस्वामी ने बतलाया है कि मनसा-वाचा-कर्मणा कृष्ण-भक्ति में लगे रहने वाले लोग इसी शरीर में मुक्त माने जाते हैं। इसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में भी हुई है—जो लोग भगवान् की सेवा में संलग्न होते हैं, वे पहले से ही भौतिक स्थिति को पार कर चुके होते हैं।

भगवान् भक्तों तथा अभक्तों को जीवन के चरमलक्ष्य की अनुभूति के लिए समान अवसर प्रदान करते हैं। भक्तों को भगवान् का दर्शन करने और उनकी पूजा करने का प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त होता है। जो लोग इस पद को प्राप्त नहीं होते उन्हें भगवान् के कार्यकलापों से परिचित होने और उसी पद तक पहुँचने का अवसर मिलता है।

ब्रह्म-संहिता (५.३८) में कहा गया है—

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्ति विलोचनेन

सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।

यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

यद्यपि कृष्ण का दिव्य स्वरूप श्यामल है किन्तु भगवान् से प्रेम करने वाले भक्त श्यामसुन्दर के रूप में उनका गुणगान करते हैं। भगवान् का स्वरूप इतना सुन्दर है कि *ब्रह्म-संहिता* (५.३०) में भी कहा गया है—

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं

बर्हावितंसमसिताम्बुदसुन्दरांगम् ।

कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं

गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥

“मैं आदि भगवान् गोविन्द की पूजा करता हूँ जो दिव्य बाँसुरी का वादन करते हैं। उनके नेत्र कमलपुष्पों के समान हैं। वे मोरपंखों से सुशोभित हैं और उनका वर्ण स्वच्छ श्यामल बादलों के समान है। उनका यह स्वरूप करोड़ों कामदेवों को लजाने वाला है।” भगवान् का यह सौन्दर्य उन भक्तों के द्वारा देखा जाता है, जो उनसे प्रेम करते हैं, वे भक्त जिनकी आँखों में भगवत्प्रेम रूपी अंजन लगा रहता है। (प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन)

भगवान् को गिरिधारी या गिरिवरधारी भी कहा जाता है। चूँकि कृष्ण ने भक्तों के लिए गोवर्धन पर्वत उठा लिया था अतः भक्तगण उनकी अचिन्त्य शक्ति की प्रशंसा करते हैं किन्तु अभक्तगण भगवान् की अचिन्त्य शक्ति को देख करके भी उनके कार्यकलापों को काल्पनिक मानते हैं। एक भक्त और अभक्त में यही अन्तर होता है। अभक्तगण भगवान् को कोई नाम नहीं दे सकते फिर भी वे श्यामसुन्दर तथा गिरिधारी कहलाते हैं। इसी तरह भगवान् देवकीनन्दन तथा यशोदानन्दन कहलाते हैं, क्योंकि उन्होंने माता देवकी तथा माता यशोदा के पुत्र रूप में भूमिका निभाई। वे गायों तथा बछड़ों का पालन करने के कारण गोपाल कहलाते हैं। इसीलिए कोई संसारी नाम न होने पर भी वे भक्तों द्वारा देवकीनन्दन, यशोदानन्दन, गोपाल तथा श्यामसुन्दर कहकर सम्बोधित किये जाते हैं। ये सभी दिव्य नाम हैं जिनकी महिमा भक्तगण ही जानते हैं, अभक्तजन नहीं।

पुरुष रूप में कृष्ण के इतिहास को देखा तो सबों ने है किन्तु जो भक्त हैं और भगवान् से प्रेम करते हैं, वे ही इस इतिहास की प्रशंसा करते हैं जबकि अभक्तगण, प्रेम से वंचित होने के कारण, भगवान् के कार्यों, स्वरूप तथा गुणों को काल्पनिक मानते हैं। अतः इस श्लोक में *न नामरूपे गुणजन्मकर्माभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः* की व्याख्या हुई है। इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने दृष्टान्त दिया है कि पीलिया रोग से पीड़ित व्यक्तियों को मिश्री की मिठास का स्वाद नहीं मिल पाता यद्यपि उन्हें पता है कि मिश्री मीठी होती है। इसी तरह अभक्त भवरोग के कारण भगवान् के नाम, रूप, गुण तथा कार्यों को नहीं समझ पाते यद्यपि वे महाजनों या इतिहास के माध्यम

से भगवान् के कार्यों का अवलोकन करते रहते हैं। पुराण प्राचीन प्रामाणिक इतिहास-ग्रंथ हैं किन्तु अभक्तगण, उन्हें, विशेषतया वैदिक ज्ञान के सार *श्रीमद्भागवतम्* को नहीं समझ पाते। यहाँ तक कि वे *भगवद्गीता* के दिव्य ज्ञान के प्रारम्भिक अध्ययन को भी नहीं समझ पाते। वे मात्र चिन्तन द्वारा बेतुके विकारों से युक्त मनमाना भाष्य लिखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि *भक्तियोग* का अभ्यास किये बिना और दिव्य पद तक उठे बिना भगवान् को या उनके नाम, रूप, गुणों या कार्यों को नहीं समझा जा सकता। किन्तु यदि भाग्यवश भक्तों की संगति मिल जाय और मनुष्य भगवान् तथा उनके स्वरूप को वास्तव में समझ ले तो वह तुरन्त मुक्त हो जाता है। *भगवद्गीता* (४.९) में भगवान् कहते हैं—

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।

त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥

“हे अर्जुन! जो मेरे प्राकट्य तथा कर्मों की दिव्य प्रकृति को जानता है, वह इस शरीर को त्यागने के बाद इस भौतिक जगत में पुनः जन्म नहीं लेता अपितु मेरे दिव्य धाम को प्राप्त होता है।”

इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है कि भगवान् के प्रति स्नेह तथा प्रेम से भक्तगण अपने शब्द द्वारा उनसे अपने मन की बात व्यक्त करते हैं। किन्तु अन्य लोग ऐसा नहीं कर पाते जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि की गई है। (*भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः*)

शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्

नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ।

क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयो-

राविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ

शृण्वन्—निरन्तर भगवान् के विषय में सुनते हुए (श्रवणं कीर्तनं विष्णोः); गृणन्—कीर्तन करते हुए या सुनाते हुए; संस्मरयन्—स्मरण करते हुए (भगवान् के चरणकमलों तथा उनके स्वरूप के विषय में निरन्तर चिन्तन करते हुए); च—तथा; चिन्तयन्—चिन्तन करते हुए (भगवान् के कार्यकलापों का); नामानि—उनके दिव्य नाम; रूपाणि—उनके दिव्य स्वरूप; च—भी; मङ्गलानि—दिव्य होने से शुभ; ते—आपके; क्रियासु—भक्ति में लगे रहने पर; यः—जो; त्वत्-चरण-अरविन्दयोः—आपके चरण कमलों पर; आविष्ट-चेताः—पूर्णतया लीन रहनेवाला भक्त; न—नहीं; भवाय—भौतिक पद के लिए; कल्पते—योग्य है।

विविध कार्यों में लगे रहने पर भी जिन भक्तों के मन आपके चरणकमलों में पूरी तरह लीन रहते हैं और जो निरन्तर आपके दिव्य नामों तथा रूपों का श्रवण, कीर्तन, चिन्तन करते हैं तथा अन्यो को स्मरण कराते हैं, वे सदैव दिव्य पद पर स्थित रहते हैं और इस प्रकार से पूर्ण पुरुषोत्तम

भगवान् को समझ सकते हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में बतलाया गया है कि भक्तियोग का किस तरह अभ्यास किया जा सकता है। श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है कि जिस किसी ने मन से, वचन से तथा कर्म से (*कर्मणामनसा गिरा*) भगवान् की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर दिया है (*ईहा यस्य हरेर्दास्ये*) वह चाहे जीवन की किसी भी स्थिति में क्यों न हो, (*निखिलास्वप्यवस्थासु*) वह बद्ध न रहकर मुक्त हो जाता है (*जीवन्मुक्तः स उच्यते*)। ऐसा भक्त भौतिक शरीर धारण करते हुए भी अध्यात्म में स्थित होता है। *नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति*—दिव्य कार्यों में लगे रहने के कारण वह भौतिक देहधारी बनने से भयभीत नहीं रहता। (*भागवत् ६.१७.२८*) इस जीवन्मुक्त अवस्था का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए श्री चैतन्य महाप्रभु ने प्रार्थना की है—*मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि*—मैं तो जन्म-जन्मान्तर केवल आपकी अहैतुकी भक्ति की कामना करता हूँ (शिक्षाष्टक, ४)। यदि भगवान् की इच्छा से कोई भक्त इस भौतिक जगत में जन्म लेता भी है, तो भी उसकी भक्ति में अवरोध नहीं आता। जब राजा भरत से भूल हो गई और अगले जन्म में वे हिरन बन गये तो उनकी भक्ति में अवरोध नहीं आया यद्यपि उन्हें उपेक्षा के लिए थोड़ा दण्ड मिला। नारदमुनि कहते हैं कि यदि कोई भक्तिपथ से च्युत भी होता है, तो उसका विनाश नहीं होता किन्तु अभक्तों का सर्वनाश हो जाता है क्योंकि वे भक्ति नहीं करते। इसीलिए *भगवद्गीता* (९.१४) में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि कम से कम हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन तो किया करे।

सततं कीर्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।

नमस्त्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥

“महात्मा लोग सदैव मेरे यश का कीर्तन करके दृढ़ संकल्पपूर्वक प्रयास करके मेरे समक्ष नतमस्तक होकर भक्तिपूर्वक मेरी पूजा करते हैं।”

मनुष्य को चाहिए कि नौ प्रकार के भक्तियोग का परित्याग न करे (*श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्...*)। इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण विधि है गुरु, साधु तथा शास्त्र से श्रवण करना (*श्रवणम्*)। *साधु-शास्त्र-गुरु-वाक्य, चित्ते करिया ऐक्य*। हमें अभक्तों की टीकाएँ तथा व्याख्याएँ नहीं सुननी चाहिए क्योंकि श्रील सनातन गोस्वामी ने *पद्मपुराण* से उद्धरण देते हुए इसका निषेध किया है—

अवैष्णवमुखोद्गीर्णं पूतं हरिकथामृतम् ।

श्रवणं नैव कर्तव्यं सर्पोच्छिष्टं यथा पयः ॥

हमें चाहिए कि दृढ़तापूर्वक इस आदेश का पालन करें और मायावादियों, निर्विशेषवादियों, शून्यवादियों, राजनीतिज्ञों अथवा तथाकथित विद्वानों से श्रवण करने का प्रयास न करें। हमें ऐसे अशुभ संग से पूरी तरह बचते हुए शुद्ध भक्तों से ही सुनना चाहिए। इसीलिए श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है—
श्रीगुरुपदाश्रयः—अर्थात् मनुष्य को चाहिए कि शुद्ध भक्त के चरणकमलों की शरण खोजे क्योंकि वही गुरु बन सकता है। श्री चैतन्य महाप्रभु का उपदेश है कि जो भगवद्गीता के आदेशों का दृढ़तापूर्वक पालन करता है, वही गुरु है—यारेदेखा तारे कह, 'कृष्ण'—उपदेश (चैतन्यचरितामृत, मध्य ७.१२८)। वावदूक या मदारी या जादूगर कभी गुरु नहीं होता। गुरु तो वह है, जो भगवद्गीता प्रस्तुत करता है, कृष्ण के उपदेशों को यथारूप में प्रस्तुत करता है। श्रवण बहुत महत्त्वपूर्ण है, अतः वैष्णव साधु, गुरु तथा शास्त्र से ही श्रवण करना चाहिए।

इस श्लोक का क्रियासु शब्द महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ है “शारीरिक श्रम द्वारा” या “कार्य द्वारा।” मनुष्य को भगवान् की व्यावहारिक सेवा करनी चाहिए। हमारे कृष्णभावनामृत आन्दोलन में हमारा सारा कार्य कृष्णसाहित्य के वितरण पर केन्द्रित रहता है। यह अत्यावश्यक है। किसी के पास भी पहुँच कर उससे कृष्णसाहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित किया जा सकता है, जिससे भविष्य में वह भक्त बन सके। इस श्लोक में ऐसे ही कार्यों की संस्तुति की गई है। क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोः। ऐसे कार्य भक्त को भगवान् के चरणकमलों का सदा स्मरण दिलाते रहेंगे। कृष्णविषयक पुस्तकों के वितरण में चित्त एकाग्र करने से मनुष्य कृष्ण में लीन रहता है। यही समाधि है।

दिष्ट्या हरेऽस्या भवतः पदो भुवो

भारोऽपनीतस्तव जन्मनेशितुः ।

दिष्ट्याङ्कितां त्वत्पदकैः सुशोभनै-

र्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवश; हरे—हे भगवान्; अस्याः—इस (संसार) के; भवतः—आपके; पदः—स्थान का; भुवः—इस धरा पर; भारः—असुरों द्वारा उत्पन्न बोझ; अपनीतः—दूर हुआ; तव—आपके; जन्मना—अवतार लेने से; ईशितुः—सबके नियन्ता आप; दिष्ट्या—तथा भाग्य से; अङ्कितां—चिह्नित; त्वत्-पदकैः—आपके चरणकमलों से; सु-शोभनैः—शंख, चक्र, पद्म तथा गदा

चिह्नों से अलंकृत; द्रक्ष्याम—हम देखेंगे; गाम्—इस पृथ्वी पर; ग्राम् च—तथा स्वर्ग में भी; तव अनुकम्पिताम्—हम पर आपकी अहैतुकी कृपा होने से।

हे प्रभु, हम भाग्यशाली हैं कि आपके प्राकट्य से इस धरा पर असुरों के कारण जो भारी बोझा है, वह शीघ्र ही दूर हो जाता है। निस्सन्देह हम अत्यन्त भाग्यशाली हैं क्योंकि हम इस धरा में तथा स्वर्गलोक में भी आपके चरणकमलों को अलंकृत करने वाले शंख, चक्र, पद्म तथा गदा के चिह्नों को देख सकेंगे।

तात्पर्य : भगवान् के चरणकमलों के तलवे शंख, चक्र, गदा, पद्म चिह्नों से अंकित होते हैं। साथ ही ध्वजा तथा वज्र भी अंकित रहते हैं। कृष्ण जब इस धराधाम में या स्वर्गलोक में विचरण करते हैं, तो ये चिह्न दृष्टिगोचर होते रहते हैं। वृन्दावन धाम दिव्य स्थान है क्योंकि यहाँ कृष्ण कई बार विचरण करते हैं। वृन्दावनवासी भाग्यशाली थे कि उन्होंने इन चिह्नों को जगह जगह देखा। जब अक्रूर कृष्ण तथा बलराम को कंस द्वारा आयोजित उत्सव में ले जाने के लिए वृन्दावन गये तो वे वृन्दावन की भूमि पर कृष्ण के चरणचिह्नों को देख कर भूमि पर लोटकर कराहने लगे। ये चिह्न उन्हीं भक्तों को दिखते हैं जिन पर भगवान् की अहैतुकी कृपा होती है (*तवानुकम्पिताम्*)। देवतागण केवल इसलिए हर्षित नहीं थे कि भगवान् असुरों का भार दूर कर देंगे अपितु इसलिए भी कि वे भगवान् के चरणों पर अंकित चिह्नों को भी भूमि पर देख सकेंगे। गोपियाँ चरागाहों में विचरण करते कृष्ण के चरणकमलों का सदैव चिन्तन करती रहती थीं और जैसाकि पिछले श्लोक में कहा गया है, केवल कृष्ण के चरणकमलों के चिन्तन से गोपियाँ अध्यात्म में लीन रहती थीं (*आविष्टचेता न भवाय कल्पते*)। गोपियों की ही तरह जो भगवान् के विचार में सदैव लीन रहता है, वह भौतिक स्तर से ऊपर स्थित रहता है और फिर इस भौतिक जगत में नहीं आता। अतः हमारा कर्तव्य है कि हम सदैव भगवान् के चरणकमलों के विषय में सुनें, कीर्तन करें और चिन्तन करें जिस तरह कि वृन्दावन में रहने वाले वैष्णवजन अहर्निश भगवान् के ही चरणकमलों का चिन्तन करते रहते हैं।

न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं

विना विनोदं बत तर्कयामहे ।

भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया

कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ते—आपके; अभवस्य—जो जैसे कि सामान्य जीव, उसका जन्म, मृत्यु, पालन पोषण से परे है, जो, उसका; ईश—हे ईश्वर; भवस्य—आपके जन्म का; कारणम्—कारण; विना—रहित; विनोदम्—लीलाएँ (आपको विवश होकर इस जगत में नहीं आना पड़ता है); बत—फिर भी; तर्कयामहे—हम तर्क-वितर्क नहीं कर सकते (लेकिन इन्हें अपनी लीला ही समझें); भवः—जन्म; निरोधः—मृत्यु; स्थितिः—पालन; अपि—भी; अविद्यया—माया द्वारा; कृताः—किया गया; यतः—क्योंकि; त्वयि—तुममें; अभय-आश्रय—हे सबों के निर्भय आश्रय; आत्मनि—सामान्य जीवन का।

हे परमेश्वर, आप कोई सामान्य जीव नहीं जो सकाम कर्मों के अधीन इस भौतिक जगत में उत्पन्न होता है। अतः इस जगत में आपका प्राकट्य या जन्म एकमात्र ह्लादिनी शक्ति के कारण होता है। इसी तरह आपके अंश रूप सारे जीवों के कष्टों—यथा जन्म, मृत्यु तथा जरा का कोई दूसरा कारण नहीं सिवाय इसके कि ये सभी आपकी बहिरंगा शक्ति द्वारा संचालित होते हैं।

तात्पर्य : जैसाकि भगवद्गीता (१५.७) में कहा गया है—*ममैवंशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः*—सारे जीव भगवान् के अंश रूप हैं अतएव गुणात्मक रूप में वे भगवान् से अभिन्न हैं। हम यह समझ सकते हैं जब भगवान् अवतार के रूप में प्रकट होते हैं या अन्तर्धान होते हैं, तो इसका कारण उनकी ह्लादिनी शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। हम भगवान् को प्रकट होने के लिए बाध्य नहीं कर सकते। वे भगवद्गीता (४.७) में कहते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

“हे भारत! जब जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राधान्य होता है तब तब मैं अवतरित होता हूँ।” जब असुरों द्वारा उत्पन्न भार को कम करने की आवश्यकता होती है, तो भगवान् इसे कई प्रकार से कर सकते हैं क्योंकि उनके पास नानाविध शक्तियाँ हैं। उन्हें अवतार के रूप में आने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वे सामान्य जीवों की तरह किसी काम को करने के लिए बाध्य नहीं किये जा सकते। सारे जीव इस जगत में भोग करने की अभिलाषा से आते हैं किन्तु वे कृष्ण के बिना भोग करना चाहते हैं (कृष्ण-बहिर्मुख हैया भोज-वाञ्छा करे) इसलिए उन्हें माया के अधीन जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा तथा रोग भोगना पड़ता है। किन्तु जब भगवान् प्रकट होते हैं, तो ऐसे कारण निहित नहीं रहते। उनका अवतरण उनकी ह्लादिनी शक्ति का कार्य होता है। हमें भगवान् तथा सामान्य जीव के बीच इस अन्तर को सदैव स्मरण रखना चाहिए और व्यर्थ ही यह तर्क-वितर्क नहीं करना चाहिए कि भगवान् आ नहीं सकते। ऐसे दार्शनिक हैं, जो भगवान् के अवतार में विश्वास नहीं करते और प्रश्न करते हैं “भगवान् को आने की क्या आवश्यकता है?” किन्तु इसका उत्तर यह है “उन्हें क्यों नहीं आना

चाहिए? वे जीव की इच्छा से नियंत्रित क्यों हों?" भगवान् इच्छानुसार कार्य करने के लिए मुक्त हैं। इसीलिए इस श्लोक में कहा गया है— *विना विनोदं बत तर्कयामहे*। वे विनोदवश ही आते हैं अन्यथा उन्हें आने की कोई आवश्यकता नहीं रहती।

जब जीव इस जगत में भौतिक भोग करने आता है, तो वह भगवान् की माया द्वारा *कर्म* तथा *कर्म-फल* में बँध जाता है। किन्तु यदि कोई भगवान् के चरणकमलों की शरण खोज लेता है, तो वह पुनः अपनी आदि मुक्त अवस्था को प्राप्त कर लेता है। जैसाकि यहाँ पर कहा गया है— *कृता यतस्त्वय्यभयाश्रयात्मनि*—जो भगवान् के चरणकमलों का आश्रय खोज लेता है, वह सदा निर्भय रहता है। चूँकि हम भगवान् पर आश्रित हैं अतएव हमें यह विचार त्याग देना चाहिए कि इस जगत में हम कृष्ण के बिना स्वतंत्रता भोग सकते हैं। इसी विचार के कारण हम बँधे हुए हैं। अब हमारा कर्तव्य है कि हम पुनः भगवान् के चरणकमलों की शरण खोजें। यह शरण *अभय* बतलायी गयी है। चूँकि कृष्ण को जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग नहीं सताते और चूँकि हम कृष्ण के ही अंश हैं अतः हम भी जन्म, मृत्यु, जरा तथा रोग के अधीन नहीं हैं किन्तु हम इन मोहमय समस्याओं में इसलिए जकड़ गये हैं क्योंकि हमने कृष्ण को तथा उनके नित्य दास रूप में अपनी स्थिति को भुला दिया है (*जीवेर 'स्वरूप' हय—कृष्णे 'नित्यदास'*)। अतः यदि हम सदैव भगवान् का चिन्तन, उनका गुणगान उनका कीर्तन करते हुए उनकी सेवा करें जैसाकि श्लोक ३७ में कहा गया है (*श्रवणं गृणन् संस्मरयंश्च चिन्तयन्*) तो हमें अपनी आदि स्वाभाविक स्थिति प्राप्त हो सकती है और हमारा बचाव हो सकता है। इसलिए देवताओं ने देवकी को विश्वास दिलाया कि वे कंस से डरे नहीं अपितु उन भगवान् का चिन्तन करें जो पहले ही उनके गर्भ में आ चुके हैं।

मत्स्याश्चकच्छपनृसिंहवराहहंस-

राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ।

त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश

भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

मत्स्य—मत्स्यावतार; अश्व—घोड़े का अवतार; कच्छप—कूर्मावतार; नृसिंह—नृसिंह अवतार; वराह—वराह अवतार; हंस—हंस अवतार; राजन्य—रामचन्द्र तथा अन्य क्षत्रियों के रूप में अवतार; विप्र—वामनदेव जैसे ब्राह्मणों के रूप में अवतार; विबुधेषु—देवताओं के बीच; कृत-अवतारः—अवतारों के रूप में प्रकट हुए; त्वम्—आपको; पासि—कृपया बचायें; नः—

हमें; त्रि-भुवनम् च—तथा तीनों लोकों को; यथा—तथा; अधुना—अब; ईश—हे भगवान्; भारम्—भार; भुवः—पृथ्वी का; हर—कृपया कम करें; यदु-उत्तम—हे यदुओं में श्रेष्ठ, हे कृष्ण; वन्दनम् ते—हम आपकी वन्दना करते हैं।

हे परम नियन्ता, आप इसके पूर्व अपनी कृपा से सारे विश्व की रक्षा करने के लिए मत्स्य, अश्व, कच्छप, नृसिंहदेव, वराह, हंस, भगवान् रामचन्द्र, परशुराम का तथा देवताओं में से वामन के रूप में अवतरित हुए हैं। अब आप इस संसार का उत्पातों कम करके अपनी कृपा से पुनः हमारी रक्षा करें। हे यदुश्रेष्ठ कृष्ण, हम आपको सादर नमस्कार करते हैं।

तात्पर्य : प्रत्येक अवतार में भगवान् को किसी न किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति करनी होती है और यदुवंश में देवकी के पुत्र रूप में उनका आविर्भाव इसकी पुष्टि करता है। अतः सारे देवताओं ने नतमस्तक होकर भगवान् की प्रार्थना की और उनसे प्रार्थना की कि जैसी आवश्यकता समझें करें। हम भगवान् को हमारे लिए कुछ करने का आदेश नहीं दे सकते। हम उन्हें केवल नमस्कार कर सकते हैं जैसाकि भगवद्गीता का उपदेश है (मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु) और उनसे प्रार्थना कर सकते हैं कि विघ्नों का संहार करें।

दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमा-

नंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ।

माभूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षो-

गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवश; अम्ब—हे माता; ते—तुम्हारी; कुक्षि-गतः—कोख में; परः—परमात्मा; पुमान्—भगवान्; अंशेन—अपनी समस्त शक्तियों सहित; साक्षात्—प्रत्यक्ष रूप से; भगवान्—भगवान्; भवाय—कल्याण के लिए; नः—हम सबों के; मा अभूत्—कभी न हों; भयम्—भयभीत; भोज-पतेः—भोजवंश के राजा कंस से; मुमूर्षोः—जिसने भगवान् के हाथों से मरने की ठान ली है; गोप्ता—रक्षक; यदूनाम्—यदुवंश का; भविता—होगा; तव आत्मजः—तुम्हारा पुत्र।

हे माता देवकी, आपके तथा हमारे सौभाग्य से भगवान् अपने सभी स्वांशों यथा बलदेव समेत अब आपके गर्भ में हैं। अतएव आपको उस कंस से भयभीत नहीं होना है, जिसने भगवान् के हाथों से मारे जाने की ठान ली है। आपका शाश्वत पुत्र कृष्ण सारे यदुवंश का रक्षक होगा।

तात्पर्य : परः पुमान् अंशेन पद द्योतित करता है कि कृष्ण आदि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं। यह शास्त्र का निर्णय है (कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्)। अतः देवताओं ने देवकी को सान्त्वना दिलाई, “आपका पुत्र भगवान् है और वह अपने स्वांश बलदेव के साथ प्रकट होने वाला है। वह आपकी पूरी रक्षा करेगा और उस कंस का वध करेगा जिसने भगवान् के प्रति शत्रुता बनाये रखने का निश्चय कर

रखा है। इसलिए वह उनके हाथों से मारा जायेगा।”

श्रीशुक उवाच

इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ।

ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; इति—इस प्रकार; अभिष्टूय—स्तुति करके; पुरुषम्—परम पुरुष की; यत्-रूपम्—जिसका स्वरूप; अनिदम्—दिव्य; यथा—जिस प्रकार; ब्रह्म—ब्रह्माजी; ईशानौ—तथा शिवजी; पुरोधाय—आगे करके; देवाः—सारे देवता; प्रतिययुः—लौट गये; दिवम्—अपने स्वर्ग निवास को।

पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु की इस तरह स्तुति करने के बाद सारे देवता ब्रह्माजी तथा शिवजी को आगे करके अपने अपने स्वर्ग-आवासों को लौट गये।

तात्पर्य : कहा गया है कि—

अद्यापिह चैतन्य ए सब लीला करे।

(चैतन्य भागवत, मध्य २३.५१३)

याँर भाग्ये थाके, से देखये निरन्तरे ॥

भगवान् के अवतार नदी या समुद्र की तरंगों के समान सतत प्रकट होते रहते हैं। भगवान् के अवतार असीम हैं किन्तु भाग्यशाली भक्त ही उन्हें देख सकते हैं। सौभाग्यवश देवतागण भगवान् के अवतार को जान गये थे इसीलिए उन्होंने स्तुतियाँ कीं। अपने अपने निवासों को लौटती बार शिवजी तथा ब्रह्माजी ने अगुवाई की।

कुक्षि-गतः का अर्थ है “देवकी की कोख में”। श्रील जीव गोस्वामी ने क्रमसन्दर्भ भाष्य में इसकी व्याख्या की है। चूँकि यह पहले कहा जा चुका है कि कृष्ण वसुदेव के हृदय में विद्यमान थे और तब देवकी के हृदय में स्थानान्तरित किये गये अतः श्रील जीव गोस्वामी लिखते हैं कि यह कैसे हुआ कि कृष्ण अब कुक्षि में हैं? वे कहते हैं कि इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। भगवान् हृदय से कुक्षि में या कुक्षि से हृदय में जा सकते हैं। वे कहीं भी जा या रुक सकते हैं। जैसाकि ब्रह्म-संहिता (५.३५) में पुष्टि हुई है—अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं गोविन्दमादि पुरुषं तमहं भजामि। भगवान् इच्छानुसार कहीं भी रुक सकते हैं अतः अपने पूर्व-जन्म की इच्छानुसार देवकी को वरदान स्वरूप भगवान् देवकीनन्दन को पुत्र रूप में प्राप्त करने का अवसर मिला।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के अन्तर्गत "देवताओं द्वारा गर्भस्थ कृष्ण की स्तुति" नामक द्वितीय अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए